ISSN 0975-8321

वाङ्मय त्रैमासिक

वर्ष : 11 अक्टूबर 2014

केंद्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली से सहयोग प्राप्त

सम्पादक
डॉ. एम. फ़ीरोज़ अहमद
मोबाइल : 9044918670

सलाहकार सम्पादक
डॉ. मेराज अहमद

वाङ्मय पत्रिका अब इंटरनेट पर भी उपलब्ध www.vangmay.com

परामर्श मण्डल
प्रो. रामकली सराफ (बी.एच.यू),
मूलचन्द सोनकर (वाराणसी),
डॉ. शगुफ़्ता नियाज़ (अलीगढ़),

सम्पादकीय सम्पर्क
205- ओहद रेजीडेंसी, नियर पान वाली कोठी, दोदपुर रोड,
सिविल लाइन, अलीगढ़-202002
मोबाइल : 9044918670/9719304668
E-mail : vangmaya2007@yahoo.co.in
vangmaya @gmail .com

सहयोग राशि :
एक प्रति : 40 रु., व्यक्तिगत शुल्क पाँच वर्ष के लिए 1000 रु., वार्षिक शुल्क संस्थाओं के लिए : 300 रु., द्विवार्षिक शुल्क संस्थाओं के लिए : 500 रुपये, व्यक्तिगत आजीवन सदस्य : 2000 रुपये, (दस वर्ष के लिए) संस्थाओं के लिए आजीवन : 3,000/(दस वर्ष के लिए)

सह–सम्पादक
डॉ. इकरार अहमद
***मो.आसिफ खान* (*मोबाइल* : 9719304668)**

कानूनी सलाहकार
एम. एच. खान, एडवोकेट(हाईकोर्ट, इलाहाबाद)
एम. ए. खान, एडवोकेट(हाईकोर्ट, इलाहाबाद)

सम्पादन/संचालन

अनियतकालीन, अवैतनिक और अव्यावसायिक।
रचनाकार की रचनाएँ उसके अपने विचार हैं।
रचनाओं पर कोई आर्थिक मानदेय नहीं दिया जाएगा।
लेखकों, सदस्यों एवं मित्रों के आर्थिक सहयोग से पत्रिका प्रकाशित होती है।
उनसे सम्पादक-प्रकाशक का सहमत होना अनिवार्य नहीं है।
किसी भी विवाद के लिए न्याय क्षेत्र अलीगढ़ होगा।

रचनाकारों से.....

- रचनाएँ कृतिदेव 10 में टाइप कराकर ही भेजें।
- रचनाओं के साथ पोस्टकार्ड होने पर ही प्राप्ति की सूचना भेजी जाएगी।
- डाक टिकट लगा लिफाफा साथ आने पर ही अस्वीकृति रचना लौटायी जा सकती है अन्यथा नष्ट कर दी जाएगी।
- कृतियों की समीक्षा के लिए पुस्तक की दो प्रतियाँ भेजना अनिवार्य है।
- नमूना प्रति अवलोकन के लिए 40.00 रुपये के डाक टिकट या एम. ओ. भेजना अनिवार्य है।
- हिन्दी साहित्य की विविध विधाओं की रचनाओं का वाङ्मय स्वागत करता है।

शुल्क भेजने का पता

मनीआर्डर या बैंक ड्राफ्ट : *'डॉ. फ़ीरोज़ अहमद या वाङ्मय'* के नाम

205- ओहद रेजीडेंसी, नियर पान वाली कोठी, दोदपुर रोड, सिविल लाइन, अलीगढ़-202002

डॉ. एम. फ़ीरोज़ अहमद की ओर से डॉ. एम. फ़ीरोज़ अहमद द्वारा प्रकाशित, डॉ. एम. फ़ीरोज़ अहमद द्वारा मुद्रित तथा नवमान आफसेट प्रिंटर्स अलीगढ़ में मुद्रित एवं ई-3, अब्दुल्लाह क्वाटर्स, लाल बहादुर शास्त्री मार्ग अलीगढ़ से प्रकाशित। सम्पादक- डॉ. एम. फ़ीरोज़ अहमद

सम्पादकीय

देश के वर्तमान परिदृश य में मुस्लिम समाज के प्रश्नों और मुद्दों को लेकर अन्तर्विरोध की स्थिति रही है। कभी साम्प्रदायिकता तो कभी आतंकवाद, गरीबी, उपेक्षा, अशिक्षा इत्यादि प्रश्न ऐसे प्रश्न रहे हैं जो कि एक तरफ मुस्लिम समाज की दशा और दिशा को प्रभावित करते हैं, तो दूसरी तरफ बहुसंख्यक वर्ग को भी अपनी ज़द से बाहर नहीं जाने देते। दरअसल सामासिक संस्कृति की जटिल संरचना पर आधारित भारतीय संस्कृति और समाज का मूलभूत ढाँचा ऐसा है कि दोनों समुदायों को अलग-अलग इकाई मानकर भारतीय सामाजिक अन्तर्विरोधों से जूझा नहीं जा सकता है। वस्तुतः दोनों समाज के संबंध ऐसे हैं कि अधिकांश स्तरों पर एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। इसीलिए मुस्लिम समाज के जीवन संदर्भ वृहत्तर बहुसंख्यक समाज को प्रभावित करते ही हैं। परन्तु व्यवहारिक धरातल पर इस भौतिक वास्तविकता से इतर बहुसंख्यक वर्ग का रवैया पूर्वाग्रहों और निजी मान्यताओं से संचालित होते हुए अक्सर-व-बेश्तर सच्चाई की जमीन से दूर ऐसी प्रतिक्रियाओं पर आधारित होता है जो परिणामों के बजाय स्वस्थ मार्ग तलाशने के विखण्डनात्मक भूमिका ही निभाता है। हमदर्दी और संवेदनात्मक रवैया के बजाय मुस्लिम समाज की सकारात्मक भूमिकाओं को उभारने के बजाय उनके प्रति नफरत या फिर दया का भाव ही भरता है। इसके कि मुस्लिम समाज को भारतीय समाज की इकाई के रूप में स्वीकृति प्रदान करते हुए देश की प्रगति और विकास में उनकी भूमिका को रेखांकित करते हुए अक्सर तो विखण्डनकारी और बाधा के रूप में और कभी-कभी तथाकथित रूप से खुद को प्रगतिशील शक्ति के रूप में प्रस्तुत करते हुए हमदर्दी में उनके जीवन के अँधेरे पक्षों को ही देखा और उस पर विचार-विमर्श करने का प्रयास किया जाता है। विचार की यही परिपाटी साहित्य संबंधी शोध और आलोचना में भी प्रतिबिम्बित होती हैं।

दृष्टव्य यह है कि, देश में संवैधानिक रूप से अल्पसंख्यक होने के बावजूद मुस्लिम धर्म के आगमन और सामाजिक विस्तार के प्रारम्भिक चरण से विभिन्न क्षेत्रों में इसकी भूमिका महत्त्वपूर्ण है। राजनीति प्रशासन-व्यवस्था आर्थिक एवं धार्मिक जीवन तथा ज्ञान-विज्ञान और कला तथा संस्कृति का ऐसा कोई क्षेत्र नहीं जिसमें इस समाज ने अपनी भूमिका को ईमानदारी और जिम्मेदारी के साथ न निभाई हो। भारत के स्वतंत्रता संघर्ष में भी इस समाज की भूमिका को अनदेखा नहीं किया जा सकता है। हिन्दी भाषी क्षेत्रों में मुसलमानों की जनसंख्या शेष भारत के कतिपय राज्यों को छोड़कर कम नहीं। गौरतलब यह है कि हिन्दी साहित्य में मुस्लिम समाज और जीवन की विभिन्न स्थितियों को बहुसंख्यक वर्ग के साहित्यकारों ने अपेक्षा के अनुरूप महत्त्व नहीं दिया है। यह स्थिति खड़ी बोली गद्य के विकास के साथ विकसित साहित्य की परम्परा में तो घोर निराशाजनक रही है। यह स्थिति स्वतंत्रता प्राप्ति तक बनी रही। आज़ादी के बाद के आरम्भिक वर्षों में भी स्थिति में कोई गुणात्मक परिवर्तन लक्षित नहीं किया जा सकता है। इस बात को लेकर आलोचकों ने चिंता भी व्यक्त की है। दरअसल आधुनिक हिन्दी साहित्य में मुस्लिम समाज और जीवन की अभिव्यक्ति कतिपय अपवादों को छोड़कर मुस्लिम साहित्यकारों की रचनाओं में ही मिलती है।

यद्यपि आज़ादी से पहले हिन्दी साहित्य में मुस्लिम रचानाकारों की उपस्थिति नगण्य ही रही है, परन्तु आज़ादी के बाद हिन्दी साहित्य में मुस्लिम कथाकारों ने अपनी उपस्थिति दर्ज करवानी आरम्भ की। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में तो यह सक्रियता बढ़ती हुई परिणाम के धरातल पर काफी बेहतर हो चुकी है।

फ़ीरोज़

अनुक्रम

सम्पादकीय

इन्दुबाला
औद्योगीकरण से उत्पन्न सामाजिक समस्याएँ/6

मनीषा
मालती जोशी कृत निष्कासन उपन्यास में मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद/11

पूजा रानी
वीरेन्द्र मिश्र के नव गीतों में प्रकृति चित्रण/14

अशोक कुमार
डॉ. राजवीर सिंह धनखड़ कृत रिश्ते कैसे–कैसे उपन्यास में वस्तु विधान/17

अंकुश जाधव
युग द्रष्टा सम्पादक डॉ. माधव सोनटक्के : एक विश्लेषण/19

स्नहेलता मुर्मु
विकास विस्थापन और स्त्री/21

श्रीमती रेखा रानी
सपने खुली निगाहों के में यथार्थबोध/24

डॉ. सुशीला
असगर वजाहत कृत मैं हिन्दू हूँ कहानी–संग्रह में सामाजिक चेतना/29

कस्तूरी चक्रवती/डॉ. देबाशीष भट्टाचार्य
जैनेन्द्र के उपन्यास में अभिव्यक्त स्त्री बोध/34

राजेश यादव
दलित विमर्श और हिन्दी साहित्य/37

प्रो. रमेश शर्मा
एक अनाम कहानीकार की कहानियों में जीवन की तलाश/39

कहानी/कविता/समीक्षा

अन्तोन चेखव
भिखारी (अनुवादक यूजीनीया वानिना)/41

अन्तोन चेखव
एक छोटा सा मजाक (अनुवादक अनिल जन विजय)/44

अन्तोन चेखव
कमजोर(अनुवादक अनिल जन विजय)/46

डॉ. मंजू अग्रवाल
मुखौटे/ख्वाहिश/23

डॉ. नगमा जावेद मलिक
एक रंगारंग कोलाज : अक्षयवट/48

डॉ. नगमा जावेद मलिक
मार्कण्डेय का साहित्य : समग्र मूल्यांकन/50

डॉ. नगमा जावेद मलिक
मुस्लिम विमर्श : साहित्य के आईने में/52

पंकज सुबीर
जीवन के दुश्वार रास्तों से होकर ये प्रेम गुज़रता है/55

पंकज सुबीर
उपन्यास पाठक को बाँधे रखता है/55

डॉ. पुरूषोत्तम दूबे
शब्दातीत अनुभूतियों की रचनाएँ/56

मयंक अवस्थी
डाली मोगरे की : इसकी खुशबू दिलकश है/57

प्रकाश अर्श
अत्यंत सहज तरीक़े से लिखी हुई कविताएँ/58

रामेश्वर काम्बोज
अतीत की परछाँईयों की तरह...पाठकों का पीछा करती है/59

जसविन्दर कौर बिंद्रा
हत्या की पावन इच्छाएँ : एक मूल्यांकन/60

विजेन्द्र प्रताप सिंह
विभाजन का दर्द झेलता भारत और हिन्दी साहित्य/62

डॉ. अब्दुल लतीफ
नये विमर्शों के बहाने सामाजिक परिवर्तन की आहट/66

डॉ. कमल किशोर गोयनका
नयी सदी का कथा समय एक कीर्तिमान है और एक मानव भी/67

निवेदिता
शानी के जीवन और लेखक की भीतरी तहों में दाखिल होती हुई एक किताब/68

योगिता यादव
विराट रचनाशीलता पर संक्षिप्त विश्लेषण/70

डॉ. मो. अरशद
तीन बन्दर तीन गोलियाँ/72

औद्योगिकरण से उत्पन्न सामाजिक समस्याएं

('विसर्जन' उपन्यास के सन्दर्भ में)

इन्दु बाला

औद्योगिक क्रान्ति का प्रभाव सम्पूर्ण विश्व पर पड़ा है। स्वतन्त्रता से पूर्व ही भारतवर्ष में औद्योगिकरण का श्रीगणेश हो गया था, किन्तु स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् इस दिशा में तीव्र गति से प्रयास हुए हैं, जिसके परिणामस्वरूप औद्योगिक प्रगति एवं नगरीकरण की प्रक्रिया तीव्र हुई है[1] और समस्याओं की अभिवृद्धि हुई है। औद्योगिकरण से सामान्य अर्थ इस प्रक्रिया से है जिसमें नवीन उद्योगों की स्थापना, उनके विस्तार, पुनर्संगठन या पुनर्निर्माण आदि शामिल रहते हैं। औद्योगिकरण एक समाजशास्त्री अवधारणा है। यह वह प्रक्रिया है जिसमें कि जटिल उत्पादन कार्यों में परिवर्तन होते रहते हैं, इसमें वे मौलिक परिवर्तन शामिल हैं जो आर्थिक क्रिया से यंत्रीकरण, नवीन उद्योगों के निर्माण और नये बाज़ारों के सृजन व नवीन क्षेत्रों को ढूंढ़ने से संबंधित रहते हैं। एक प्रकार ये सह पूंजी के गहन एवं विस्तृत करने की प्रक्रिया है।

औद्योगिकरण के प्रसार से समाज में कई समस्याएं उत्पन्न हुई हैं। उद्योगों ने आवास की समस्या उत्पन्न की है। गन्दी एवं धनी बस्तियां विकसित की हैं जहाँ अपराध और अनैतिकता का नग्न ताण्डव होता रहता है और सीलन तथा बदबूदार बस्तियों में अपराधी निवास करते हैं। अनैतिकता और व्याभिचार को बढ़ावा औद्योगिकरण के द्वारा मिला है। औद्योगिकरण ने सामाजिक विघटन को बढ़ावा दिया है। वैयक्तिक विघटन के रूप में व्यक्ति के अन्दर असन्तोष, घुटन, संत्रास एवं कुण्ठाओं को जन्म मिला है। पूंजीपति, श्रमिक वर्ग के साथ-साथ आर्थिक असमानता तथा विभिन्न वर्ग विशेषतः मध्य, उच्च एवं निम्न वर्ग की स्थापना औद्योगिकरण ने की है। जहां पर वर्ग संघर्ष में अभिवृद्धि हुई है, समाज में बेकारी, औद्योगिक झगड़े, श्रमिक समस्याएं, कृत्रिम जीवन का खोखलापन, अनैतिक संबंधों का विकास एवं अपराध में वृद्धि सक्रिय हो रही है। औद्योगिकरण ने समाज में कई समस्याओं को विकसित कर समाज के माहौल को दूषित किया है।[2]

प्रतापनारायण श्रीवास्तव के उपन्यास में औद्योगिकरण से उत्पन्न सामाजिक समस्याओं का चित्रण इस प्रकार हुआ है -

1. घनी और गन्दी बस्तियों का निर्माण

घनी और गन्दी बस्ती शब्द आवास की निम्न दशा का बोध कराता है। जिसमें भीड़-भाड़ युक्त कमरे, बिजली, पानी, हवा, रोशनी आदि सुविधाओं का अभाव होता है। गन्दी बस्तियों को नगर का निम्न निवास वाला क्षेत्र कहा जाता है। वर्तमान में औद्योगिक क्षेत्रों में घनी और गन्दी बस्तियों की समस्या ने विकराल रूप धारण कर लिया है। इन गन्दी बस्तियों में गृहविहीन, बेकार, श्रमिक निवास करते हैं। घनी और गन्दी बस्तियों को जन्म देने में नगरीकरण और औद्योगिकरण की प्रक्रिया का मुख्य हाथ है। इन क्षेत्रों में निवास करने वाले लोगों का स्वास्थ्य और जीवन स्तर निम्न होता है। उनका मस्तिष्क चिन्ता, भय, तनाव और संघर्षयुक्त होता है।''[3] घनी और गन्दी बस्तियों का निर्माण मुख्यता औद्योगिकरण एवं नगरीकरण के प्रभाव से, जनसंख्या की वृद्धि, निवास के प्रति मानसिकता, निम्न वर्ग एवं श्रमिक वर्गों की बहुलता और गरीबी के कारण ही होता है।

घनी और गन्दी बस्तियों की समस्या का सजीव चित्रण 'विसर्जन' में हुआ है-''यहाँ के काम करने वाले मजदूर बिखरे हुए जहाँ-तहाँ बसे हुए थे, किन्तु फिर भी ऐसी कई एक बस्तियां उत्पन्न हो गई थीं जहाँ मजदूरों की आबादी विशेष रूप से थी। वहाँ से निकलना वैसा ही था जैसा रौरव नर्क से गुज़रना। चारों ओर फटे हुए टाटों की दीवालें उठी हुई थी, नाली के एक सिरे से दूसरे सिरे तक मल-मूत्र बिखरा हुआ पड़ा था, जिससे दुर्गन्ध निकलकर वायु-मंडल को दूषित कर रही थी। चार हाथ लम्बी-चौड़ी कोठरी में वे अपने परिवार के साथ रहते थे। उसी तंग जगह में खाते-पीते और सोते थे। वायु के आने की वहाँ मनाही थी और दुर्गन्ध का अधिकार निर्विध्न रूप से व्याप्त था। उनके बच्चे, जो भारतवर्ष के आगामी नागरिक थे, मल और मूत्र का उबटन लगाये भूत-पिशाचों के लघु संस्करण बने हुए उनकी केलिभूमि में मृत्यु को चुनौती दे रहे थे।''[4]

वर्ग संघर्ष में वृद्धि

देश में वर्ग संघर्ष की समस्या बहुत तेज़ी से बढ़ रही है। विभिन्न वर्गों को तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। उच्च, मध्य और निम्न वर्ग। उच्च वर्ग में पूंजीपति एवं उद्योगपति, मध्य वर्ग में देशभक्त, शिक्षित नौकर एवं नौकरीपेशा वर्ग तथा निम्नवर्ग में किसान, खेतिहर मजदूर एवं अन्य पेशेवर मजदूर आदि आते हैं। समाजवाद ''समाज में केवल दो वर्ग मानता है-शोषक और शोषित। अमीर वर्ग शोषक वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है तो गरीब शोषितों का। शोषित वर्ग की विजय ही उसका अन्तिम लक्ष्य है। इस विजय में वर्ग-संघर्ष अनिवार्य है तथा यह वर्ग-संघर्ष क्रान्ति, हिंसा आदि जैसे कर्मों को अनैतिक नहीं, नैतिक मानता है।''[5] विसर्जन उपन्यास में समाज में उत्पन्न वर्ग-संघर्ष की समस्या बहुत ही मार्मिक ढंग से की गई है तथा उसके वास्तविक रूप को देखने में उपन्यासकार ने अपनी सूझ-बूझ और विवेक का पूर्णरूपेण निर्वाह किया है-''आज के जीवन में अर्थ ही सामाजिक विषमता का मूल कारण है और अर्थ पर ही आधारित आधुनिक सामाजिक-व्यवस्था के अन्तर्गत नये वर्गों का प्रादुर्भाव भी हुआ है। फलतः वर्ग संघर्ष आधुनिक युग में ही विशेष रूप से प्रतिध्वनित हुआ है।''[6] विसर्जन उपन्यास में चन्द्रनाथ प्रथम वर्ग अर्थात् पूंजीपति वर्ग का प्रतिनिधित्व करता हुआ कहता है-''वही उपाय तो मैं अवलम्बन कर रहा हूँ। मैं भी मिलों की स्थापना करके समुद्र मन्थन-सा कार्य करके रत्नों अथवा श्रेष्ठ पूँजी का उत्पादन कर रहा हूँ। बुद्धि और कौशल से मैं उसका नेता होकर मजदूरों को संचालित करता हूँ। मजदूरों का समूह असुरों की भांति दूसरा वर्ग है जो मेरे द्वारा परिचालित होता है। हम दोनों के प्रयास से जो धन अथवा रत्न प्राप्त होते हैं, उसके बड़े से बड़े भाग का मैं न्यायतः अधिकारी हूँ। दूसरे वर्ग को मुझे उतना ही देना चाहिए जो उनको जीवित बनाये रखने के लिए आवश्यक है और उसके ऊपर वे कुछ भी पाने के अधिकारी नहीं हैं। मिल मालिकों अथवा पूंजीपतियों के साथ मजदूरों अथवा पूँजीहीन व्यक्तियों का संघर्ष देवासुर-संग्राम की भांति शाश्वत है।''[7] इस प्रकार चन्द्रनाथ मजदूरों का शोषण करता है तथा वह उन्हें अपना गुलाम ही बनाकर रखना चाहता है। वह उन्हें अधिक वेतन इसलिए नहीं देता कहीं वे उसके आगे सिर उठाने लगे और अपना अधिकार मांगने लगे, वर्ग-संघर्ष को सही मानते हुए चन्द्रनाथ आगे कहता है-''पूँजी प्राप्त करने के लिए दो प्रकार के व्यक्तियों के वर्गों की आवश्यकता हुआ करती है। एक वर्ग अपने चातुर्य, बुद्धिमता और कुशलता से संचालन का भार ग्रहण करता है और दूसरा उसके अधीन रहकर उसके बताये हुए मार्ग पर चलकर उसके उत्पादन में सहायता करता है। दोनों के प्रयासों से प्राप्त की हुई पूंजी का श्रेष्ठ भाग उस वर्ग को मिलता है जो उसका संचालन करता है और हेय भाग उसको जो संचालित होती है। ...संचालक वर्ग को उन्हें इतना ही देना उचित है जिनमें दूसरा वर्ग सदैव उसका अनुगत बना रहे। उसको इतना भाग कदापि न मिलना चाहिए जिसमें वह दूसरा वर्ग प्रथम वर्ग का प्रतिद्वन्द्वी हो जाय।''[8]

बेकारी

बेकारी और सामुदायिक विघटन का अटूट संबंध है। निर्धनता, बेकारी का ही परिणाम है जिसके चक्कर में व्यक्ति, परिवार और समाज तीनों ही विघटित हो जाते हैं। बेकारी के परिणामस्वरूप आत्महत्या से लेकर विभिन्न अपराध प्रवृत्तियों और सबसे निम्न स्तर पर भिक्षा-वृत्ति तक समाज में पनप जाती है। उपन्यास के विश्लेषण से विदित होता है कि शिक्षित और अशिक्षित सभी वर्गों में बेकारी विद्यमान है। कार्य करने की इच्छा रखते हुए भी जब व्यक्ति रोजगार प्राप्त नहीं कर पाता तो हम उसे बेकारी की स्थिति कहते हैं। उपन्यास में ऐसे अनेक पात्र हैं जो स्वस्थ, समर्थ तथा शिक्षित हैं। कार्य करने की तीव्र आकांक्षा इनके मन में है, किन्तु वे रोजगार पाने में असफल हैं।

'विसर्जन' उपन्यास में बेकारी की यह समस्या अशिक्षितों और शिक्षितों सभी में है। उपन्यास में पढ़ा-लिखा रामनाथ भी बेकारी की समस्या से ग्रस्त है। पढ़ाई छूट जाने के बाद भी नौकरी नहीं मिली। औद्योगिकरण के कारण रामनाथ बेकार है। वह एकांत में सोचता हुआ स्वयं से कहता है-''मैं एक कुलीन शिक्षित घर का मनुष्य हूँ। मेरे माता-पिता ने मुझको शिक्षित किया, किन्तु डिग्री लेने के पहले ही उनका देहान्त हो गया। निरूपाय होकर कॉलेज छोड़ना पड़ा। बेकारी में दिन कटने लगे। नौकरी की तलाश में पूँजीपतियों की 'नहीं-नहीं' सुनते-सुनते सुबह से शाम हो जाती है।''[9] शिक्षितों की यह बेकारी समाज में अशिक्षा को प्रश्रय दे रही है। इस समस्या का चित्रण जब होता है जब रामनाथ को नौकरी नहीं मिलती तब उसकी पत्नी उर्मिला कहती है- ''उनकी शिक्षा उनके काम न आई, पढ़े-लिखे व्यक्तियों की कहीं भी पूछ नहीं है।'' नौकरी की तलाश में ही रामनाथ को अपना गाँव छोड़ना पड़ता है- ''वह कानपुर में 'वीनस मिल' में साधारण मजदूर की श्रेणी में काम करता है।''[10]

आवास और भोजन की समस्या

आवास और भोजन की समस्या औद्योगिक श्रमिकों की

एक महत्त्वपूर्ण समस्या है। भोजन, वस्त्र और आवास मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकताएं हैं- ''आवास और भोजन व्यवस्था का श्रमिकों के स्वास्थ्य और कार्य-क्षमता पर महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। गन्दे आवासों में रहकर श्रमिक बीमारियों का शिकार बना रहता है, जिसका उसकी कार्यक्षमता पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है।''[11] भारत में श्रमिकों की आवास की अवस्था बड़ी दयनीय है। विसर्जन उपन्यास में लेखक ने आवास की समस्या का चित्रण करते हुए लिखा है, ''छोटे से छोटे घर में आठ-दस परिवार तक रहते थे और बड़े घरों में तो उनकी संख्या तीस तक और कभी-कभी उससे अधिक तक पहुँच जाती थी। उनके परिवार के व्यक्तियों में स्वच्छंता ढूंढ़ने से भी न मिलती थी। नहीं जानते कि मानव-जीवन का कौन-सा सुख भोगने के लिए भगवान ने उन्हें उत्पन्न किया था। नरक के कीड़ों के जीवन का मूल्य कुछ शायद हो भी सकता है, किन्तु उनके जीवन का कोई मूल्य है, यह तो हमें नहीं मालूम।।''[12]

भारतीय औद्योगिक श्रमिकों के रहन-सहन के स्तर, व्यवहार और खान-पान में लगातार गिरावट आती जा रही है। फलस्वरूप उत्पादन तथा स्वास्थ्य गिरता जा रहा है। श्रमिकों का खान-पान निम्न स्तर का होता है। वे भोजन में ऐसे खाद्य पदार्थों का प्रयोग करते हैं जो पूँजीपतियों के लिए बेकार की वस्तु होती है। लेखक मजदूरों के खान-पान का चित्रण करते हुए लिखता है- ''उनका खान-पान भी उस अवस्था के अनुरूप था। गर्हित-से-गर्हित वस्तुओं का प्रयोग करते और केवल पेट के पोलेपन को अखाद्य वस्तुओं से भर देते थे। मक्खियों, मच्छरों और खटमलों की यह क्रीड़ा-भूमि थी, जो उनका रक्त चूसने के लिए उसी भाँति सचेष्ट रहते थे, जैसे उनके मालिक पूँजीपति।''[13]

इस प्रकार विसर्जन उपन्यास में गृह और भोजन समस्या का चित्रण बड़े ही मार्मिक ढंग से किया गया है।

श्रमिक समस्याएं

सामान्यतः शारीरिक शक्ति से लिए जाने वाले कार्य को ही श्रम कहकर पुकारा जाता है। श्रम को करने के लिए श्रमिकों की आवश्यकता पड़ती है। औद्योगिकरण के कारण श्रमिकों की संख्या में वृद्धि हुई है। प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से श्रमिकों से सम्बद्ध समस्याएं जैसे कम मजदूरी, अधिक कार्य के घंटे, काम की दशाओं का अनुकूल न होना, गन्दे निवास स्थान, अवकाश न मिलना, वेतन समय पर न मिलना आदि श्रम समस्याओं के अन्तर्गत मानी जाती है। पूँजीपति अपने लाभ में वृद्धि के लिए कम मजदूरी देकर अधिक घंटों तक कार्य कराता है। कम से कम छुट्टी देता है। मकान व्यवस्था में कोई दिलचस्पी नहीं लेता है। क्योंकि अधिकतम लाभार्जन मानवी स्वभाव का एक अंग है। पूँजीपतियों के उक्त शोषणपूर्ण चक्र के प्रभाव के कारण श्रमिकों का जीवन अन्धकारमय हो जाता है जिससे अनेकानेक श्रम समस्याओं का उदय होता है।

विसर्जन उपन्यास में श्रमिकों की प्रमुख समस्या मजदूरों को कम मजदूरी देकर स्वयं अधिक मुनाफा कमाने की है। मिल मालिक चन्द्रनाथ स्वयं सारा लाभ कमाता है और श्रमिकों को कम वेतन देता है इसलिए श्रमिक उसके खिलाफ हड़ताल करते हैं। श्रमिकों का एक नेता दल्ली दूसरे श्रमिक महाबीर से कहता है-''हड़ताल करेंगे और क्या इरादा है। सभा का जो हुक्म होगा वह हमें मानना ही पड़ेगा। सभा जो कुछ करती है, हमारी भलाई के लिए करती है। मिल मालिक तो खुद लम्बा-लम्बा मुनाफा खाते हैं और हमको कुछ देते नहीं।''[14]

उपन्यास में सेठ नेमीचन्द एक ऐसा लालची पात्र है जो मजदूरों का खून चूसता है तथा मजदूरों को कीड़े-मकोड़े समझता है। वह अपने सार्जेंट से कहता है कि कोई मजदूर यदि झगड़ा करता है तो उसे गोली मार दो। वह मजदूरों द्वारा अपनी मेहनत की कमाई लेने को झगड़ा कहता है-''मैंने अपने सार्जेंट से कह दिया है कि जो मजदूर बदमाशी करता नज़र आये उसे पहले मौत के घाट उतार दो, पीछे जो खर्च होगा मैं सहर्ष कर डालूँगा।''[15] मजदूर केवल पूँजीपतियों और उद्योगपतियों की तिजोरी ही भरने के लिए पैदा हुए हैं। उनके जीवनयापन की ख़बर लेने के लिए कोई नहीं, मजबूरन श्रमिकों को अपनी समस्याओं के समाधान के लिए हड़ताल का मार्ग अपनाना पड़ता है। विसर्जन उपन्यास मे जब मजदूर हड़ताल करने का निर्णय ले लेते हैं तो चन्द्रनाथ अपने पूँजीपति वर्ग से कहता है-''भाइयो, हमारे सामने परिस्थिति गंभीर होती जा रही है और ऐसा मालूम होता है कि हड़ताल निश्चय होगी। हमारे गुप्तचरों ने सूचना दी है कि मजदूरों ने हड़ताल करने का पूरा निश्चय कर लिया है।''[16] अतः औद्योगिकरण के कारण श्रमिकों की समस्या में अभिवृद्धि हो रही है। पूँजीपति काम अधिक चाहते हैं और मजदूरों को कम वेतन देते हैं जिसके कारण समस्याएं जन्म लेती हैं।

औद्योगिक झगड़े

मानव जीवन का कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं होता है जहाँ कुछ न कुछ झगड़े उठ खड़े ना होते हों जिससे समसयाओं में वृद्धि होती है और उसे उन समस्याओं से भिड़ना पड़ता है।

मानव जिस तरफ पग बढ़ाता है वहीं पर बाधाएँ, समस्याएं पथ रोकर खड़ी हो जाती है। औद्योगिक क्षेत्र में भी अनेक समस्याओं की अभिवृद्धि होती है। कहीं पर कर्मचारियों में तो कहीं पर मजदूरों में असन्तोष व्याप्त हो जाता है। उनके रहन-सहन के स्तर, कार्य के घंटे, वेतन, सुविधाएं ऐसे विवाद हैं जहाँ पर मजदूर और मालिक के संबंधों में तनाव उत्पन्न हो जाता है। मालिक अपने निहित स्वार्थ के बदले मजदूरों से कम वेतन, कम सुविधाएं देकर अधिक उत्पादन और कार्य चाहने लगता है जिससे मजदूरों का मनोबल गिर जाता है और उनमें असन्तोष व्याप्त हो जाता है। मजदूरों को सुख-सुविधा नहीं प्रदान की जाती है। उत्पादन का मुनाफा नहीं दिया जाता, उनकी वेतन वृद्धि समय-समय पर नहीं होती है। किसी के मरने पर उसके परिवार की उपेक्षा, मनोरंजन एवं कल्याण के साधनों में कमी आदि घटनाएं उग्र रूप धारण करने लगती हैं और औद्योगिक झगड़े उठ खड़े होते हैं। हड़ताल और तालेबन्दी शुरू हो जाती है। श्रमिकों के अन्दर पारस्परिक सहयोग की भावना उत्पन्न हो जाती है और इसी सहयोग और सामूहिक भावना के फलस्वरूप संघ का निर्माण होता है। संघ के अन्दर रहकर मजदूर पर्याप्त शक्ति का अनुभव करता है और औद्योगिक झगड़े उठ खड़े होते हैं। मालिक व कर्मचारी के मध्य समुचित मानवीय संबंधों की स्थापना होने के कारण तनाव झगड़े की स्थिति आती है और परिणाम प्रकट होता है हड़ताल के रूप में। विसर्जन उपन्यास में इस समस्या का विवेचन हुआ है।

उपन्यास में मजदूरों का संघर्ष हड़ताल का रूप ले लेता है। जब मजदूर संघ औद्योगिक पूंजीपतियों के विरोध में प्रदर्शन करता है तो पूंजीपति उन निहत्थे मजदूरों पर गोली चलवा देते हैं जिसमें तीन सौ मजदूर मारे जाते हैं। मजदूरों के नेता भगवती प्रसाद कहता है- ''कचहरी में जो उस दिन गोली-काण्ड हुआ था, उसमें तीन सौ मजदूर मारे गये हैं। उसी के विरोध में मजदूर सार्वजनिक सभा करना चाहते हैं, यद्यपि सरकार ने पूँजीपतियों के कहने से दफा 144 लगा दी है, परन्तु मजदूर इस समय किसी प्रकार नहीं रोके रुकते। वे सब मरने के लिए उतावले हो रहे हैं।''[17] देवकीनन्दन जो मजदूर संघ का प्रधान नेता है वह मजदूरों से कहता है कि हमारी हड़ताल का प्रभाव पूंजीपतियों पर पड़ना चाहिए क्योंकि वह हमारे वास्तविक शत्रु है, ''मेरा तो यह विचार है कि विरोध-प्रदर्शन किसी ऐसे मार्ग द्वारा किया जाये, जिसका प्रभाव पूँजीपतियों पर पड़े। पूँजीपति तो सरकार और मजदूरों को लड़ाकर तमाशा देखना चाहते हैं। हमारी लड़ाई तो पूंजीपतियों से है, अतएव उनको हानि पहुँचे, ऐसा कार्य हमको करना चाहिए।''[18] उनकी मांगें नवयुग की पृष्ठभूमि है जहाँ पर मानवता बिलख रही है, अभावों में, कष्टों में। आवश्यकता है कि उनको समझने तथा दया की भावना से निराकरण करने की, तभी श्रमिकों की कठिनाइयां दूर हो सकती है।

अपराध और अनैतिकता में वृद्धि

अपराध एक ऐसी क्रिया है जिसको समूह पर्याप्त से खतरनाक समझता हो तथा ऐसे कार्य के लिए अपराधी को दण्डित करने और रोकथाम करने के लिए एक निश्चयात्मक सामूहिक प्रतिक्रिया की आवश्यकता हो। यही नहीं ''समाज विरोधी व्यवहार जोकि समूह द्वारा अस्वीकार किया जाता हो जिसके लिए समूह दण्ड निर्धारित करता है, अपराध के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।''[19] अपराध में सामाजिक मानदण्डों का उल्लंघन होता है और मनुष्य द्वारा निर्मित समस्त मूल्यों के संग्रह का उल्लंघन करता है। प्रत्येक समाज अपनी सामाजिक संरचना और व्यवस्था को बनाए रखने एवं सुचारू रूप से चलाने के लिए कुछ नियम, प्रथाएं, रूढ़ियाँ .... सामाजिक मानदण्डों का निर्माण करता है इनमें से कुछ का उल्लंघन करने पर निन्दा की जाती है, कुछ का उल्लंघन अनैतिक माना जाता है।[20]

''अनैतिकता का संबंध नीतिशास्त्र से है। अनैतिकता में व्यक्ति की आत्मा उसे धिक्कारती है। अनैतिकता व नैतिकता का अन्तर अच्छाई व बुराई के कारण किया जाता है और कभी-कभी ईश्वर के अस्तित्व के आधार पर भी इसकी पुष्टि की जाती है।''[21] औद्योगिकरण ने अनेक परिस्थितियों को जन्म देकर अपराधों व अनैतिकता में वृद्धि की है। ऐसे नगरों में विभिन्न भाषा, धर्म और सम्प्रदाय के व्यक्ति एक साथ रहते हैं। अधिकतर व्यक्ति एक-दूसरे से परिचित भी नहीं होते। जगह की कमी के कारण अधिकतर श्रमिक अपने परिवार को गाँव में छोड़कर इन नगरों में अकेले ही रहते हैं। श्रमिकों पर परिवार और पड़ोस का कोई नियन्त्रण नहीं होता। आर्थिक समस्या के कारण सदैव उनमें तनाव रहता है। जिसके फलस्वरूप इन परिस्थितियों में फंसकर व्यक्ति, चोरी, मद्यपान और हत्या जैसे अपराध कर बैठता है। इस प्रकार औद्योगिकरण ने अपराध और अनैतिकता में वृद्धि करके सामाजिक जीवन दूषित किया है।

विसर्जन उपन्यास में अपराध और अनैतिकता की वृद्धि का समावेश हुआ है। उपन्यास में चन्द्रनाथ एक ऐसा पात्र है जो अपने फायदे के लिए मजदूरों को नशे के कुएं में धकेलता है वह पहले सबको मुफ़्त में शराब पिलाता है ताकि मजदूर

नशे के आदी हो जाएं। ''नशा एक ऐसा अस्त्र है, जिसके ज़रिये हम लोग उन पर अपना प्रभाव जमाए रख सकते हैं। ..... सभी मजदूरों के नशा-पानी का इन्तजाम करें और पीना चाहते हैं। हमको नशे का प्रचार करना चाहिए और मजदूरों के बीच में ऐसे चुने हुए आदमी भेजे जो उनको मुफ्त में नशा पिलाये। शराब, अफीम, गांजा और चरस इत्यादि ऐसे नशे हैं जो कभी छुड़ाए नहीं छूटते।''[22]

औद्योगिकरण के कारण अनैतिकता के प्रसार में भी वृद्धि हुई है। चन्द्रनाथ मजदूरों की नेता कनक की सारी सम्पत्ति धोखे से हथिया लेता है और उसके सामने शादी का प्रस्ताव रखता है किन्तु वह उसके प्रस्ताव को ठुकरा देती है तब वह उससे अपने अपमान का बदला लेना चाहता है और उसे अपनी हवस का शिकार बनाना चाहता है। ''कनक मेरे प्रस्ताव को ठुकराती है? कनक को परास्त किए बिना मैं कभी विश्राम नहीं करूँगा। उसके दर्प-दर्पण को पदघातों से चूर-चूर कर दूँगा... तुम मुझसे बच नहीं सकती। कनक, तुम्हारी रक्षा कोई नहीं कर सकता..... तुमको चींटी की भाँति मसलकर फेंक दूँगा।''[23] आगे चन्द्रनाथ कहता है- ''कनक समझती है कि वह स्वतन्त्र होकर जीवित रह सकती है यह उसकी भूल है। इस भूल को मिटाना मेरा कर्त्तव्य है। अपनी बुद्धि और कौशल के दर्प में वह चूर-चूर है। उसको नष्ट करना मेरे जीवन का लक्ष्य है। स्त्री होकर पुरुष की भाँति मेरा सामना करती है, उसको पद्दलित करके उस पर अपनी सत्ता स्थापित करना मेरा ध्येय है।''[24]

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रतापनारायण श्रीवास्तव ने अपने उपन्यास 'विसर्जन' में औद्योगिकरण के कारण निरंतर बढ़ती हुई समस्याओं का विस्तार से वर्णन किया है। औद्योगिकरण के कारण गन्दी बस्तियों का निर्माण वर्ग-संघर्ष में वृद्धि, बेकारी, आवास और भोजन की समस्या, श्रमिक समस्याएं, औद्योगिक झगड़े, अपराध और अनैतिकता में वृद्धि आदि सामाजिक समस्याएं विकराल रूप धारण कर चुकी हैं जिसका सजीव चित्रण 'विसर्जन' उपन्यास में हुआ है।

सन्दर्भ-

1. डॉ. विश्वम्भर दयाल गुप्ता, उपन्यास का समाजशास्त्र, पृ. 168
2. वही, पृ. 177
3. एम.एल. गुप्ता और डी. डी. शर्मा, समकालीन भारत में सामाजिक समस्याएं, पृ. 31
4. प्रतापनारायण श्रीवास्तव, विसर्जन, पृ. 126
5. डॉ. ज्ञानचन्द्र गुप्त, हिन्दी उपन्यास और ग्राम चेतना
6. डॉ. सुरेन्द्र नाथ तिवारी, प्रेमचन्द और शरतचन्द्र के उपन्यास : मनुष्य का बिम्ब, पृ. 29
7. विसर्जन, पृ. 219
8. वही, पृ. 218-219
9. वही, पृ. 4-5
10. वही, पृ. 5
11. आर.सी. सक्सेना, श्रम समस्याएं और समाज कल्याण, पृ. 62-63
12. विसर्जन, पृ. 127
13. वही, पृ. 127
14. वही, पृ. 147
15. वही, पृ. 68
16. वही, पृ. 139
17. वही, पृ. 102
18. वही, पृ. 103
19. इलियट और मोरिल-सोशल डिस आग्रेनाइजेशन, पृ. 542-43
20. समकालीन भारत में सामाजिक समस्याएं, पृ. 26
21. वही, पृ. 3
22. विसर्जन, पृ. 142
23. वही, पृ. 222
24. वही, पृ. 234

शोधार्थी हिन्दी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक (हरियाणा)

मालती जोशी कृत 'निष्कासन' उपन्यास में मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद

मनीषा

मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद दो शब्दों के योग से बना है। मनोविज्ञान+यथार्थवाद। मनोविज्ञान अंग्रेज़ी भाषा के Psychology शब्द के पर्यायवाची रूप में हिन्दी भाषा में प्रयुक्त होता है। Psychology शब्द की व्युत्पत्ति लैटिन भाषा के दो शब्दों Psychs + Logo से मिलकर हुई है। Psycho का अर्थ-आत्मा और Logo का अर्थ है-विचार-विमर्श (अध्ययन) होता है। अस्तु मनोविज्ञान का अर्थ हुआ-आत्मा का अध्ययन। 'विभिन्न इन्द्रियां मनुष्य का बाहरी परिवेश तथा परिस्थितियों से संबंध स्थापित कराती हैं और मन इस प्रकार अर्जित अनेक संबंधों को व्यवस्थित करने के लिए आन्तरिक क्रिया करता है। अतः मनुष्य के व्यवहारों के दो पक्ष होते हैं-एक बाहरी और दूसरा भीतरी। एक शारीरिक-दूसरा मानसिक, इन्हीं मानवीय व्यवहारों के अध्ययन को मनोविज्ञान कहते हैं।'[1]

यथार्थवाद का मूल सिद्धान्त है-किसी भी वस्तु को उसके मूल अर्थात् यथार्थ रूप में संप्रेषित करना। आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी कहते हैं- 'यथार्थवाद वस्तुओं की पृथक्-पृथक् सत्ता का समर्थक है। वह समष्टि की अपेक्षा व्यक्ति की ओर अधिक उन्मुख रहता है। यथार्थवाद का संबंध प्रत्यक्ष वस्तु जगत है।'[2]

मनोविश्लेषण शास्त्रियों के विश्लेषण के सिद्धान्तों को मानकर चलाने वाला यथार्थवादी दृष्टिकोण मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद कहलाया। मनोवैज्ञानिक यथार्थवादी फ्रायड, एडगर तथा जुंग के सिद्धांतों को आधार मानते हैं। सिद्धांतों के आधार पर हीनभावना की ग्रंथि, दमित वासना एवं जातीय अभिव्यक्ति के सिद्धान्तों के माध्यम से उपन्यासों में मनोवैज्ञानिक चित्रण की प्रधानता हुई। मनोवैज्ञानिक उपन्यासकार इलाचन्द्र जोशी के अनुसार 'आधुनिक मनुष्य ने सभ्यता के ऊपर संस्कारों के लेप से अपने मन में अवश्य सफेदपोशी कर ली है, पर जिस पर्दे पर वह सफेदपोशी की गई है वह इतना झीना है कि जरा-सी बात में वह फट जाता है और उसमें तनिक भी छिद्र पैदा होते ही उसके नीचे दबी पड़ी पशु प्रवृत्तियों को जितना ही जोर से मनुष्य नीचे दबाता है उतने ही वेग से वे रबर की गेंद की तरह ऊपर उछाल मारने लगती है।'[3] मनोवैज्ञानिक यथार्थवादी साहित्य में साहित्यकार अचेतन मन में मनुष्य की अतृप्त दबी हुई भावनाएँ, इच्छाएँ, वासनाएं और कुंठाओं को पहचानकर उन्हें साहित्यिक जामा पहनाकर उजागर करने का प्रयास करते हैं। मनोवैज्ञानिक साहित्यकार का उद्देश्य सामान्य व्यक्ति की असामान्य मनोदशा व असामान्य व्यक्ति की असामान्य अवस्था को प्रस्तुत करना है। मालती जोशी ने कामवासना, अन्तर्द्वन्द्व, टेंशन आदि विकारों को अपने उपन्यासों में चित्रित किया है।

मालती जोशी का 'निष्कासन' उपन्यास मनोवैज्ञानिक यथार्थवाद से संबंधित है। इस उपन्यास के माध्यम से मालती जी ने एक तरफ दिखाया है कि विधवा होने की पीड़ा, दुःख, घुटन, तड़प कम अपितु पुनर्विवाह के बाद मन की व्यथा को अधिक दिखाया है। दूसरी तरफ बेटी के अवचेतन में पड़ने वाली ग्रंथियों के बारे में बताया है। इस दुनिया में मनुष्य अपनी संतान के सुख के लिए कितनी भागदौड़ करता है लेकिन अपनी औलाद जब उसकी उपेक्षा करती है। इसका मार्मिक चित्रण इस उपन्यास में बड़ी निर्ममता से किया गया है।

इस उपन्यास की मुख्य पात्र माया व उसकी पुत्री विधु है। माया के पति नरेन्द्र की कार दुर्घटना में असमय मृत्यु हो जाती है। उसकी नौ वर्ष की पुत्री विधु अपनी मां का सहारा बनती है। पिता की मृत्यु की पीड़ा किसी दार्शनिक की तरह पीकर वह अपनी मां की देखभाल करती है- ''शोक-प्रदर्शन करने के लिए आने वाली भीड़ से, रास्ते पर लोगों की करूणा दृष्टि से, नाते-रिश्तेदारों के व्यंग्य-बाणों से बड़े कौशल से मुझे इन सबसे बचाती हुई वह उबार लायी थी। उसकी मजबूत बाहों का सहारा पाकर मैंने पतवार फिर थाम ली थी और ज़िन्दगी बड़े आराम से पार हुई जा रही थी।''[4]

एक दुर्घटना ने विधु (लड़की) के जीवन को बिल्कुल बदल दिया साथ ही माँ के और बेटी के रिश्ते में दरार आ गई अर्थात् उनका रिश्ता समाप्त हो गया- ''विधु के अवचेतन में तुम्हारे कारण कैसी-कैसी ग्रंथियां पड़ गयी हैं। शायद इसीलिए

वह तुमसे इतनी नफरत करने लगी है।''[5] डॉ. नगेन्द्र कहते हैं कि- ''जीवन में समरसता लाने का प्रयत्न ही मानव जीवन का शाश्वत कर्त्तव्य है। यह अन्विति समरसता का प्रयत्न अनजाने, अवचेतन या अचेतन में होती रहती है।''[6] डॉक्टर साहब को दिखाने के बाद उसने भी यही कहा था-''माँ को लेकर इसके मन में कुछ कॉम्पलेक्स है, गाँठ है-इसी से माँ के सामने पड़ते ही वह अपना संतुलन खो बैठती है।''[7] इसका मुख्य कारण गंगाधर था। जो अपनी नौकरी से मुअत्तिल होने के कारण अपनी पत्नी, रिश्तेदारों और अफसरों की हीन दृष्टि से दुखी था- ''महीनों से कितनी स्नेहिल स्पर्श का प्यासा उसका मन फगुनायी एकांत दोपहरी में विधु के आकर्षण नहीं झेल पाया होगा। अगर विधु की जगह और कोई होता, तो मेरी सारी सहानुभूति गंगाधर के साथ होती।''[8] यहां गंगाधर के मन में दबी कामवासना की वृत्ति को दिखाया है। सी.ई.एम. जोड़ के अनुसार-''मनुष्य के अवचेतन मन में दबी काम-वासनाओं के ऊपर मनुष्य के गुण दोष की विवेचक शक्ति का नियन्त्रण रहता है, जिससे समाज की मर्यादा का निर्वाह होता है। परन्तु अवसर पाकर मनुष्य की कामवृत्ति प्रतिबन्ध तोड़कर हिंसक पशु की भाँति अपना शिकार करने के लिए बाहर आ जाती है।''[9] गंगाधर ने विधु को अपनी हवस का शिकार बनाया और उसके शरीर ....निशान छोड़ दिए। माँ को इस बात की पीड़ा थी कि वह पुरुष के पहले स्पर्श को कभी नहीं महसूस कर पायेगी कि वह क्षण कितना पवित्र, रोमांचित और मंगलमय होता है। उसके जीवन में यह घटना उसे काले सांप की भांति उसे घेरे रहेगी। लेकिन यहां दिखाया गया कि स्त्री अपने ऊपर हुए अत्याचार को सहन न करके उसके प्रति विरोध प्रकट करती है। विधु गंगाधर को खड़ाऊ से पीटकर उसे अहसास दिलाती है कि उसने मेरे साथ गलत व्यवहार किया है। वह मिट्टी का लोंद नहीं है। इसके परिणामस्वरूप गंगाधर ने आत्महत्या कर ली। लेकिन समाज में लोगों की धारणा थी कि वह अपनी नौकरी से संस्पेंड होने व बीवी की लड़ाई झगड़े से तंग आकर उसने यह कदम उठाया है। जैसे ही विधु को गंगाधर की आत्महत्या के बारे में पता चलता है तो वह स्वयं को जिम्मेदार मानती है उसके मन में यह बात कुंठित हो जाती है। मां को हमेशा अपनी बेटी के भविष्य को लेकर मन में डर बैठा रहता है। उसी प्रकार माया को विधु के आने वाले जीवन को लेकर मन में अनेक शंकाएं बनी हुई थी कि कहीं विधु किसी को गंगाधर की आत्महत्या का कारण न बता दे जिससे उसकी शादी होने में अड़चनें पैदा न हो तो वह उसके साथ हमेशा साये की तरह पीछे-पीछे रहती थी। माँ के इस व्यवहार से तंग आकर विधु ने मां से कहा-''तंग आ गयी हूँ तुम्हारी जासूसी से।.... मुझे घड़ी भर चैन नहीं लेने देती हो।''[10] बेटी का ऐसा व्यवहार देखकर उसने उसे एक जपट लगा दिया। विधु को फिट्स पड़ने की बीमारी लग गई। उधर माया के घर उसकी ननद (बिन्नी) आई और विधु भी अपनी बुआ के साथ चली गई, जाते वक्त भी वह अपनी माँ को देखना पसंद नहीं करती।

विधु की आंखों में माँ (माया) के प्रति ज्वाला दहक रही थी। उसने बुआ के घर रहकर वहीं इन्द्रप्रस्थ कॉलेज में प्रवेश ले लिया। बिन्नी की जेठानी का पुत्र दीपू विधु को दिल ही दिल में चाहने लगा। जेठानी ने दिल्ली के सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक से सलाह ली तो पता चला कि विधु के अवचेतन में माँ के प्रति ग्रंथियां पड़ी थी। इसी कारण वह अपनी मां को देखकर अपना संतुलन खो बैठती थी वैसे यह नॉर्मल लड़की है। मां को बेटी की स्थिति का पता चलता है तो माया अपने ननद (बिन्नी) को गंगाधर की घटना से अवगत कराना चाहती है लेकिन उसके मन में डर था कहीं विधु के विवाह में कोई विगहन न आये इस कारण वह अपना मुंह बंद कर लेती है। माया स्वयं को निर्दोष साबित न कर पाती। दूसरी तरफ बिन्नी जेठानी डॉक्टर की सलाह के बाद विधु को अपनी बहू के रूप में स्वीकार करने को तैयार हो गई और माया से अनुमति मांगी गई। उसने स्वयं को बुरा बनाकर शादी की मंजूरी दी और न शादी में जा सकी। वह अपनी बेटी को दुल्हन के रूप में देख न सकी जो प्रत्येक मां का सपना होता है। रिश्ते में लगे देवर ने विधु के कन्यादान का कार्यभार संभाला और शादी में सम्पूर्ण तैयारी बिन्नी ने की। माया ने तो केवल रुपये भेज दिये।

माया अब अकेली पड़ गई। उसने अपने को दफ़्तर के कार्य में व्यस्त कर लिया। इसके कारण उसे शरीर में पीड़ा होना स्वाभाविक था। इसका मुख्य कारण रात में नींद न आना और स्वयं को अकेला महसूस करना। दफ़्तर के कार्य में लगने से बॉस ने सहानुभूति दिखाई तो अन्य कर्मचारियों की नज़रों में चर्चा का विषय बन गई- ''दफ्तर में सबकी दृष्टि में एक मौन उपालंभ उतर आया। जो आंखें पहले आदर से झुक जाती थीं, अब बेबाकी से मेरा पीछा करतीं। जब-जब केबिन से बुलावा आता, लगता जैसे मैं घूरती हुई आँखों का कार्ड ऑफ ऑनर लेने जा रही हूँ।''[11]

एक दिन माया का सहपाठी नरेन्द्र उसे पुस्तकालय में मिल जाने पर उसे घर ले गया और उसे कई पुस्तकें पढ़ने के लिए दी। जब माया उसके घर चौथी बार गई तो नरेन्द्र की पत्नी ने उसे हीन दृष्टि से देखा। नरेन्द्र की पत्नी की सोच गलत नहीं है, यही हमारे समाज में सोच रखी जाती है। अपने

अकेलेपन को शुरू करने के लिए पार्क की शरण और पुनः शिक्षा प्रारंभ कर दी। उसने एम.ए. का फार्म भर दिया। एक दिन डॉ. कोहली का रिश्ता माया के लिए अख़बारी कागज़ पर चलकर आया। डॉ. कोहली स्वयं एक अपनी पत्नी और दो बेटे छोड़कर अमेरिका से भारत आया था- ''पश्चिम, जहां लोग सिर्फ वर्तमान को जीते हैं, उसे पूरी इच्छाशक्ति के साथ भोगते हैं। तभी तो इतना खुलकर हँस पाते हैं।''[12] शांति से जीवनयापन करने के लिए वह अमेरिका के आपाधापी जीवन को छोड़कर भारत आया है। इसी कारण उसने महाराष्ट्र के किसी सुदूर गांव में अपना दवाखाना खोला। माया ने डॉ. कोहली से तो विवाह किया परन्तु उसने अपने को पूर्ण रूप से डॉ. कोहली को समर्पित नहीं किया। वह हमेशा अपनी बेटी (बिन्नी) की यादों में खोई रहती थी। उसे मन में यही विचार आता कि उसकी बेटी विधु उसकी न रहकर बिन्नी की बेटी बन गई है। माया से एक रात डॉ. कोहली ने पूछा कि मनुष्य शादी क्यों करता है? और उसने स्वयं समझाया कि ''शादी का मकसद सिर्फ शारीरिक संतुष्टि नहीं, उसका इंतजाम तो चाँदी के कुछ टुकड़ों में कहीं भी हो सकता। इंसान जब शादी करता है, तो जरूर ही इससे कुछ ज्यादा चाहता है।''[13] शादी के बारे में माया से जानना चाहा कि यह शादी तुम्हारे ऊपर कोई बोझ तो नहीं। जब वह अपनी पत्नी के साथ शारीरिक संबंध बनाने की चाह रखता है तो ऐसा लगता है कि कहीं वह उसके साथ जोर जबरदस्ती तो नहीं कर रहा। माया ने पिछली बीती ज़िन्दगी को भूलने के विषय में कहा कि यह मुमकिन नहीं है। डॉ. कोहली ने कहा कि भुलाने के लिए कोई नहीं कहता लेकिन कम से कम अपने दर्द को हम बांट सकते हैं यह सुनकर माया ने डॉ. कोहली को समर्पण का आश्वासन तो दे दिया लेकिन ''सच तो यह था कि सैकड़ों योजना की मानसिक दूरी के साथ जब दो शरीर मिलते हैं, तो उस मिलन में कोई मांगल्य, कोई सौंदर्य, कोई अर्थ नहीं रह जाता।''[14]

विधु ने अपनी माँ (माया) को अपने जीवन से निष्कासित कर दिया लेकिन माँ ऐसा नहीं कर पाई। इसका प्रमुख कारण माँ का बेटी के प्रति प्रेम अर्थात् माँ-माँ होती है और बेटी-बेटी। बेटी अपने जीवन में आगे बढ़ गई। परन्तु माँ का जीवन स्थिर बनकर रह गया।[15] माया ने डॉ. कोहली के सिगरेट केस में एक दिन एक तस्वीर देखी जिससे उसके दो सुन्दर गुलाबी चेहरे, नीली आंखों वाले बच्चों की तस्वीर थी जो हूबहू डॉ. कोहली से मिलती थी। माया ने सोचा उन्हें भी अपने परिवार की याद आती होगी। परन्तु वह उनकी याद में रो नहीं सकते। इस कारण उनका पौरुष है। वे भी निर्वासन की पीड़ा सहन कर रहे हैं। तभी माया ने सोचा कि अतीत को भूलकर अब वह डॉ. कोहली बनकर जीयेगी।

इस उपन्यास में नारी के जीवन में आए कई मोड़ों का यथार्थ रूप से चित्रण किया है। लेकिन इस उपन्यास को पढ़ने पर मन में एक विचार उत्पन्न होता है कि विधु के अवचेतन मन में माँ के प्रति नफरत का क्या कारण रहा होगा? क्या माँ गंगाधर के प्रति आकर्षित थी? या उनका कोई संबंध था? विधु के मन में कहीं यह बात तो नहीं समा गई थी यदि माया की गंगाधर के साथ मित्रता नहीं होती तो ऐसा दुष्कर्म व्यवहार नहीं होता और ना ही विधु गंगाधर की आत्महत्या का जिम्मेवार स्वयं को मानती। माँ अपनी बेटी को खुशहाल बनाने के लिए विधु की जासूसी न करती जो विधु को गलत लगता है। ये सभी मनोवैज्ञानिक ही ग्रंथियों का मामला है।

संदर्भ-

1. सूर्यनारायण मुंशी, सावित्री निगम, रोगी मन, पृ. 20
2. उमेश शास्त्री, हिन्दी साहित्य का निबन्धात्मक इतिहास, पृ. 265
3. इलाचन्द जोशी, प्रेत और छाया (पृष्ठभूमि)
4. मालती जोशी, निष्कासन, पृ. 80
5. वही, पृ. 97
6. डॉ. नगेन्द्र, विचार और अनुभूति, पृ. 89
7. निष्कासन, पृ. 98
8. वही, पृ. 83
9. सी.ई.एम.जोड़, गाईड टू मार्डन टाटा-साइको एनलिसिस एण्ड इट्स इफेक्ट, पृ. 205
10. निष्कासन, पृ. 91
11. वही, पृ. 96
12. वही, पृ. 78-79
13. वही, पृ. 79
14. वही, पृ. 80
15. वही, पृ. 80

शोधार्थी-हिन्दी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

वीरेन्द्र मिश्र के नवगीतों में प्रकृति–चित्रण

पूजा रानी

प्रकृति और मनुष्य का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध है। सृष्टि के प्रारम्भकाल में जब आदिमानव ने नेत्रोन्मोलन किया होगा तो उसे सर्वप्रथम प्रकृति का ही सहयोग एवं साहचर्य प्राप्त हुआ होगा। प्रकृति के अद्‌भुत कार्य-कलाप को देखकर मानव की भय, विस्मय, प्रेम आदि विविध भावनाओं का विकास हुआ है। प्रकृति काव्य का मुख्य तत्त्व है। प्राणीमात्र के आकर्षर्ण का केन्द्र प्रकृति का सौन्दर्य रहा है। भाव की सुंदर अभिव्यक्ति के लिए आधार रूप में प्रकृति का सहारा लिया जाता है। इसलिए मानव सदैव से ही उसके प्रति आकर्षित होता रहा है।

साहित्य जीवन की व्याख्या होती है और प्रकृति जीवन का अभिन्न अंग है। साहित्यकार अन्य प्राणियों की अपेक्षा अधिक भावुक तथा संवेदनशील प्राणी माना जाता है। इस प्रकार प्रकृति उसके लिए सृजन की अद्वितीय प्रेरणा भी रही है। पंत जैसे कवि के लिए प्रकृति काव्य प्रेरणा रही है। वे लिखते है- "कविता करने की प्रेरणा मुझे सबसे पहले प्रकृति के निरीक्षण से मिली है, मैं घंटों एकान्त में बैठा प्राकृतिक दृश्यों को एकटक देखा करता था और कोई अज्ञात आकर्षण, मेरे भीतर एक अव्यक्त सौन्दर्य का जाल बुनकर मेरी चेतना को तन्मय कर देता था।"[1]

डॉ. सुनीता कुमारी का कथन है कि- "आधुनिक युग में मानव जिस छल, प्रपंच, ईर्ष्या द्वेष की 'पिशाच संस्कृति' के दौर से गुज़र रहा है, प्रकृति उससे मुक्त एक दूसरा स्वरूप पूरी समृद्धि के साथ प्रस्तुत करती है, अतएव प्रकृति को सही धरातल पर समझने की आवश्यकता है।"[2]

वीरेन्द्र मिश्र के काव्य में प्रकृति के सहज ही दर्शन होते हैं। उन्होंने प्रकृति के अनेक बिंबों-प्रतीकों और प्राकृतिक व्यापारों को अपने रचना के संसार में रेखांकित बखूबी ही किया है जो किसी न किसी व्यापक अर्थ को अपने अंदर संजोकर रखे होती है। मिश्र जी के नवगीतों में नदी, समुद्र, लहर, पेड़, पक्षी, किरन, चाँदनी, धरती, पवन, पहाड़ इत्यादि अनेक प्राकृतिक सौन्दर्य में है।

वीरेन्द्र मिश्र जी ने प्रकृति के बहुत ही सुंदर चित्र खीचे हैं कवि को सुबह एक शिशु के समान लगती है। मिश्र जी ने अपने काव्य का प्रेरणा स्त्रोत प्रकृति को ही माना है- "सुबह हुई तो मुझे लगा ये, निशा समय की गुज़र चुकी है/नवीन-शिशु-सी लगी लुभाने, प्रसन्न मूरत खिले सुमन की/जवान किरनें, लगी थिरकने,/पलक उठाए, अलक सँवारे/मुझे प्रेरणा मिली बहुत कुछ"[3]

कवि पर्वत को अपना मंच मानता है जिस पर वह अपने गीत गा रहा है तथा खुशी से नाच रहा है और श्रोतागण उसके गीतों का आनन्द उठा रहे है। इस मंच पर कवि को सारी दुनिया सुन रही है-"पर्वत मेरा मंच है/छिड़ती जिस पर रागिनी/गाता हूँ मैं झूमकर/सुनती सारी यामिनी"[4]

कवि उल्लास के साथ वर्षा के नवगीत गा रहा है और अपनी प्रेमिका से पूछता है कि क्या वह उसके वर्षा के नवगीतों को सुन रही है। यहां कवि ने अपना और वर्षा का सुंदर सम्बन्ध स्थापित किया है- "जलतरंग पर/वर्षा के नवगीत/सुन रही हो क्या?/मेरे रिमझिम मन के वर्षा-गीत"[5]

कवि ने अपनी प्रेमिका के प्रति अपने प्यार को नदियां और सागर के माध्यम से व्यक्त किया है यहां नदी प्रेमिका है और सागर प्रेमी है कितनी ही सदियां इन दोनों ने देखी है लेकिन इनका प्यार शाश्वत है रात को चांद इनके जल में झिलमिलाता है और उनके सपने महिलाओं की भांति तैरते है। ये दोनों एक-दूसरे के प्रति पूर्णरूप से समर्पित है- "कितनी कितनी सुधियां हम-तुम दोनों में,/गहरी-गहरी नदियां हम तुम दोनों में,/अगली पिछली सदियां हम तुम दोनों में,/चांद थरथराता है दोनों के दृग-जल में,/हंसती सपनों की जल-परियां सैलानी।/तुम मेरी आंखों में हो या हो लाखों में,/हम तुम दोनों प्यासे सागर के पानी।"[6]

सौंदर्य चाहे प्रिया की अश्रु गीली पलकों में हो, चाहे ऋतुओं के रूप-विन्यास में हो अथवा देश की सांस्कृतिक धरोहर में हो, सदैव उनकी लेखनी का स्पर्श पा जीवंत हो उठा है। कवि का यहां कितना भिन्न, कितना स्वस्थ और प्रसन्न स्वर है। मिश्र जी ने फागुन के महीने का इतना संजीव चित्रण किया है कि पाठक पढ़कर मुग्ध हो जाता है- "कंचन किरणे

पानी से रास रचाती है/सतरंगी सपने साथ लिए मंडराते है/रसवंती बाहे सिमटी हुई लजाती है/श्वासों के अश्वारोही घिर-घिर आते है/चंचल बहार रंगों में भीग नहाती है/गाती है शबनम गीत, मंदिर है प्रीति/कुंकुम बिखेरती सुबह सुहागिन गाती है,/भर मांग-मांग सिदूर, न बैठो दूर/कि फागुन गा लो रे।"[7]

वीरेन्द्र मिश्र ने बहुत जगह तो एक ही पद में फूल, घटा, मेघ, रात, चाँद, आकाश का चित्रण कर अपूर्व प्रकृति प्रेम का उदाहरण प्रस्तुत किया है। इन सभी प्रकृति प्रतीकों का एक ही स्थान पर संयोजन कवि की विराट प्रकृति चित्रण क्षमता का परिचायक है। यहां कवि ने गांव का बड़ा ही सुन्दर प्राकृतिक चित्रण किया है- "ठण्डी-ठण्डी छांव है, मीठा-मीठा राग है/धरती जैसी आँख में, सपने जैसा बाम है/नीला-नीला व्योम है, नीली-नीली रात है/भीगे-भीगे फूल है, झीनी-झीनी बात है/हल्की-हल्की धूप है, चली-फिरती छाँव है/उठती गिरती है हवा, भूला-भूला गाँव है"[8]

नदियां, झरने, समुद्र, हरी घास, वर्षा, लहलहाती फसलें-यानी यह संपूर्ण शस्य श्यामला धरती कवि की सौंदर्य-दृष्टि की परिधि में आती रही है और उससे उसका भावगत तादात्म्य होता रहा है। कहीं-कहीं ये छवि-चित्र इतने संजीव और मोहक बन गए है कि पाठक बिना मुग्ध हुए रह ही नहीं सकता। यहां ये उदाहरण प्रस्तुत है-"दूब कहीं हरियाई दूर चरागाहों में/घटियां बजी अनगिन धूल भरी राहों में,/छेड़े संझवाती-सी राधा के प्राण विकल/नदियां के पार कहीं गूंज रही वंशी है।"[9]

कवि ने हवा का भी बड़ा सुंदर चित्रण किया है, यहां कवि ने हवा का मानवीकरण किया है। बारिश के मौसम का हवा भरपूर आनन्द उठा रही है। हवा बारिश के साथ हठ-खेलिया करती है- "भरे पूरे मेघों के पास मुस्कराकर,/जुहू के समंदर में डुबकियां लगाकर,/वर्षा के मेघराग छेड़ कर तरन्नुम में/वो देखों, व्योम की सभाओं में छा गई हवाएं।/आ गई हवाएं।"[10]

हवाएं जब आती है तो अपने साथ सुगंध और बारिश लाती है। जिसे कवि ने कहा है कि हवाएं नदियों का संदेश लाई है और ऐसे मौसम में कवि का मन खुशी से झूम रहा है और उसके दिल का सूनापन समाप्त हो गया है। कवि का मन कोयल की मीठी वाणी, नदियों के गीतों से नहीं भर रहा है वह उन्हें सुनते ही रहना चाहता है- "सुना गई हमको वे नदियों की लोक-धुनें,/लगा, उन्हें और सुनें, और सुनें, और सुनें,/जंगल के सन्नाटे आ गए सड़क पर/हर मन के सूनेपन गले मिले खुलकर,/कोयल पंचम छेड़ो हमें धन्य कर दो,/तुम्हीं कहो ऐसे में और कहां जाएं?"[11]

जब बारिश होती है तो चारों ओर मौसम सुहाना हो जाता है। बारिश के कारण प्रकृति पर निखार आता है और गंदगी धूल जाती है जिससे प्रकृति की चमक बढ़ जाती है और ऐसे मौसम में सभी पक्षी मोर, तितली अपनी खुशी को जाहिर करते है- "लाई वे भीगा लावण्य नई लहरों का,/माथा ठंडा हुआ जले-भुने शहरों का,/तना एक इंद्रधनुष, हंसी एक बिजली,/मोर एक नाच उठा, उड़ी एक तितली,/हुआ तरोताजा मन बादल-बादल होकर,/शिरा-शिरा बरस उठीं गीत की विधाएं।"[12]

यहां कवि ने बारिश के मौसम का बहुत की सुन्दर चित्र खींचा है। बारिश होने से प्रकृति में ताज़गी आ जाती है तथा उसका अंग-अंग खिल उठता है। एक ऐसा ही आकर्षक सौंदर्य-चित्र बहुत बड़े 'कैनवस' पर यानी ब्रह्मांड के विराट फलक पर अंकित किया है यहां कवि विराट प्रकृति के दर्शन कराता है जिसमें मिश्र जी ने प्रकृति की हर वस्तु को इतने सुंदर ढंग से दर्शाया है कि पाठक भी आश्चर्य में पड़ जाता है कि कवि ने यह सब लिखा कैसे यह देखिए- "सौर मंडलों की है सुंदरतम अप्सरा/ये अपनी धरती गीतांबरा,/नभ-गंगा जिसके गीतों की ध्रुवपंक्ति है,/चंद्रलोक है जिसका अंतरा,/सागर-सा स्नेह है गगन,/अंबर जैसा इसका मन,/कंधे पर इंद्रधनुष है/ये ही तो प्रकृति-पुरुष है/नाव नदी धूप-छांव जल,/गांव, गली, झोपड़ी, महल/अपनी ये धरती गीतांबरा।"[13]

अब जरा धरती और मेघ का यह वार्तालाप भी सुनिए, जिसमें मानव-हृदय की रागात्मकता रंग बिखेर रही है- "शिखरों पर मनभर कर पुरवाई चूम कर/मनचाहे मौसम में मनमाना झूमकर/लो धरती रानी मैं आ गया।/जब तक मैं रस ढोलूं मरूथल में बीहड़ में,/ढोले की दुल्हन को ले आओ पीहर में,/आऊं तो दृग भरकर देखे वह प्यार से/लद जाए वह मेरे रिमझिम के भार से,/गाए-ये बादल तो भा गया।"[14]

कभी कवि स्वयं अपनी भाव-समाधि में उसके इतने समीप पहुंच जाता है कि यह संवाद दो मित्रों के पारस्परिक आदान-प्रदान का स्वरूप तय करने लगता है। यहां कवि के सामने मेघ नहीं, उसका जनक यानी महासागर है-"मैंने कब चाहा तुम रोते ही जाओ,/मेरे संग हंस लो तुम, मेरे संग गाओ,/अपना दुख मिल-जुल कर बांटें हम, आओ/कुछ मेरी ज्वाला की लपटें तुम ले लो/दे दो हाहाकारी मन की वीरानी।"[15]

कवि ने प्रकृति के माध्यम से मनुष्य की दशा को प्रकट किया है। जिस प्रकार ताल, नदी तटबंधों से हमेशा घिरे रहते है। उसी प्रकार मनुष्य भी बन्धनों में बंधा हुआ है और जब वह अपने रिश्तों को निभा नहीं पाता तो उसके रिश्तों की मिठास समाप्त हो जाती है और उसके जीवन में दुःख का समावेश हो जाता है- "तटबंधों से घिरे/ताल, झील या नदी/ज्वार

नहीं/बूंद में मिठास नहीं/केवल संगीत-हीन त्रासदी"[16]

ध्वंस की प्रतीक्षा में आज के मानव की दयनीय विवशता का चित्रण वीरेन्द्र जी ने प्रकृति के माध्यम से इस प्रकार किया है- "कंधे पर धरे हुए खूनी यूरेनियम/हंसता है तम।/युद्धों के मलवे से उठते हैं प्रश्न और/गिरते हैं हम।/धूप भरी दोपहरी, धूल भरी शाम और कज्जली निशा/सब कुछ ही खुरदुरा, पहने हम वेदना या जिजीविषा,/ऊब और इंतजार स्वर्ग के विधान में/बन गए नियम।"[17]

स्वार्थ और प्रपंच के छल-छद्म से भरी हुई राजनैतिक और सामाजिक परिस्थितियां जब जीवन का सारा रस ही सोख लें और लोग भ्रष्ट व्यवस्था के बोझ से दबे-पिसे कराह रहे हों तब कवि बसंत के स्वागत की असमर्थता व्यंजक प्रतीकों के माध्यम से इस प्रकार करता है- "पतझर कुर्सी पर बैठा है इस बार न जाएगा,/दल बदल रहे सामंत सुमन हर रंग उड़ जाएगा,/ऊंचे कुबरे पर्वत पर बंधक सारस्वत वाणी।/कुंठा के प्रहरी घेरेंगे फागुन का राज-भवन,/इन अमलतास के वस्त्रों को देखेंगे रक्तनयन,/तुम दोनों विस्मित क्षुब्ध रहोगे भर दृग में पानी/ऋतु राजा।/ऋतु रानी।"[18]

वीरेन्द्र मिश्र ने विशेष रूप से समुद्र और मेघ को उन्होंने कभी स्वतंत्र रूप में और कभी अपनी मनः स्थिति के अनुसार भावनाओं से रंजित किया है। कितनी ही बार मेघों ने यदि अपने रिमझिम की बांसुरी से उन्हें लुभाया तो कितनी ही बार डराया भी। मेघ और समुद्र दोनों प्रतीक के रूप में भी उनके गीतों में बार-बार आए। दोनों ने उनके मन को कभी भिगोया, कभी क्षुब्ध किया, कभी उत्फुल्ल किया, कभी निराश किया। प्रकृति के माध्यम से उन्होंने आज के मानव की दयनीय दशा का चित्रण दिखाया है तो साथ ही राजनीति के भ्रष्ट रूप का भी चित्रण भी दिखाया है। इस प्रकार वीरेन्द्र मिश्र के नवगीतों में हमें प्रकृति के विभिन्न रूपों के दर्शन होते हैं।

संदर्भ-

1. सुमित्रानंदन पंत, आधुनिक कवि, पृ. 7-8
2. डॉ. सुनीता कुमारी, नरेश मेहता का काव्य का सांस्कृतिक मूल्यांकन, पृ. 116
3. वीरेन्द्र मिश्र, लेखनी बेला, पृ. 74
4. वही, पृ. 99
5. वीरेन्द्र मिश्र, जलतरंग, पृ. 66
6. वीरेन्द्र मिश्र, गीता विविधा, पृ. 62
7. वीरेन्द्र मिश्र, लेखनी बेला, पृ. 90-91
8. वही, पृ. 98-99
9. वीरेन्द्र मिश्र, गीत पंचम, पृ. 116
10. वीरेन्द्र मिश्र, गीत विविधा, पृ. 123
11. वही, पृ. 123
12. वही, पृ. 123
13. वीरेन्द्र मिश्र, शांति-गंधर्व, पृ. 66
14. वही, पृ. 95
15. वही, पृ. 61
16. वीरेन्द्र मिश्र, जलतंरग, पृ. 50
17. वीरेन्द्र मिश्र, शांति गंधर्व, पृ. 69
18. वीरेन्द्र मश्र, गीत पंचम, पृ. 163

शोधार्थी-हिन्दी-विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

डॉ. राजबीर सिंह धनखड़ कृत 'रिश्ते कैसे कैसे' उपन्यास में वस्तु–विधान

अशोक कुमार

अपने लेखन के माध्यम से समाज को विकास की राह दिखाने का प्रयास प्रत्येक लेखक करता है। समाज की सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियाँ ही लेखक को लिखने के लिए प्रेरित करती है। डॉ. राजबीर सिंह धनखड़ एक ऐसे ही लेखक हैं जिन्होंने 'रिश्ते कैसे कैसे' उपन्यास में समाज की विभिन्न परिस्थितियों, समस्याओं को अपनी विषय वस्तु बनाया है।

वस्तु शब्द संस्कृत भाषा का नपुंसक लिंग है। साहित्यशास्त्र में वस्तु का अभिप्राय है कथावस्तु, कथानक या आधारभूत सामग्री। कथावस्तु अथवा कथानक शब्द अंग्रेज़ी के प्लाट का हिन्दी रूपान्तर है। कथ् धातु से निर्मित कथानक का शाब्दिक अर्थ है कथा का लघु रूप अथवा सारांश। नालन्दा विशाल शब्द सागर के अनुसार ''वे साधन या सामग्री जिनसे कोई चीज़ बनी हो, वास्तविक व कल्पित सत्ता चीज़ सत्य या किसी नाटक या काव्य का कथानक इतिवृत्त वस्तु है।''[1] किसी भी साहित्य की आधारभूत सामग्री को साहित्य की शब्दावली में वस्तु की संज्ञा दी जाती है। ''अनुभूति या भाव तत्त्व की अभिव्यक्ति के लिए लेखक वस्तु-तत्त्व का विन्यास करता है। इसके अन्तर्गत कथानक पात्र तथा प्रतीक उपमान सब कुछ आ जाता है। प्रबन्ध काव्यों में बहुधा प्रख्यात वृत्त को ही वस्तु के रूप किया जाता है। किन्तु रचनाकार अपनी आवश्यकता के अनुरूप उसमें यथास्थान परिवर्तन करके उसका प्रयोग करता है।''[2]

अतः कह सकते हैं कि साहित्य के वर्ण्य-विषय कथानक, पात्र तथा चरित्र चित्रण, सामाजिक परिवेश, चिन्तन, प्रकृति-चित्रण, प्रेम निरूपण आदि तथ्य ही साहित्य की 'वस्तु' का निर्माण करते हैं। 'रिश्ते कैसे कैसे' उपन्यास की कथा ग्रामीण समाज का ताना-बाना है। उपन्यास का आरंभ सावित्री और महासिंह की बातचीत से होता है। सावित्री महासिंह को अपने लड़के नरेश के विवाह के लिए देखी गयी लड़की के बारे में बताती है, साथ ही उनकी कमजोर आर्थिक स्थिति के बारे में भी बताती है। महासिंह कहता है कि ''मैंने उनकी आर्थिक स्थिति से कुछ नहीं लेना देना। मेरे लिए उस लड़की के घरवालों का खानदान अच्छा होना चाहिए। खानदानी व्यक्ति के साथ रिश्तेदारी का मजा अलग ही होता है। खानदानी रिश्तेदार को अपनी-अपनी इज्जत नहीं बल्कि रिश्तेदार की इज्जत भी प्यारी होती है।''[3] महासिंह धनवान तथा उदार प्रवृत्ति का व्यक्ति है। वह अपने लड़के नरेश का विवाह मांगेराम की कैलाशो के साथ करता है। मांगेराम महासिंह की सामाजिक प्रतिष्ठा को देखकर विवाह में अपनी हैसियत से ज्यादा पैसा खर्च करता है। वह सोचता है कि ''अब महासिंह के हिसाब से मुझे भी शादी में दो पैसे ज्यादा खर्च करने चाहिए ... कुछ पैसे बैंक से कर्ज के रूप में ले लेता हूँ। ये पैसे तो फिर उतरते रहेंगे परन्तु काम बढ़िया हो जायेगा।''[4] हैसियत से ज्यादा पैसा खर्च करने के कारण मांगेराम कर्जवान हो जाता है। उसके परिवार की आर्थिक स्थिति डाँवाडोल हो जाती है। लेखक ने लोक संस्कृति का व्यापक चित्रण किया है। विवाह में भात भरवाने, खांड कसार खिलाने, बारात चढ़ने के समय नेग देने आदि सभी मान्यताओं का वर्णन किया है। भौतिकता की इस अंधी दौड़ में युवा पीढ़ी नैतिकता-अनैतिकता के प्रश्न को नहीं मानती। धनसिंह की लड़की स्वीटी कॉलेज में पढ़ते समय अपने दोस्त से शारीरिक सम्बन्ध बनाती है। धनसिंह बताता है कि ''बात इतनी बढ़ गयी कि यह लड़की स्वीटी प्रिगनेट हो गई। अपनी इज्ज़त आबरू को बचाने के लिए अब इसका गर्भपात करवाया है।''[5] आज की युवा पीढ़ी यौन-सन्दर्भों में स्वच्छन्दता चाहते हैं। मास्टर प्यारेलाल कविता को ट्यूशन पढ़ाने उसके घर आता है। वे दोनों एक-दूसरे से प्यार करने लगते हैं। मास्टर प्यारे लाल कविता से अनैतिक सम्बन्ध बनाता है और गुरु-शिष्या के पवित्र रिश्ते को कलंकित करता है। ''मास्टर जी कविता का कमरे में पढ़ने का मतलब समझ गया और उसकी जवानी ने भी अंगड़ाई ली ... फिर वह डरते-डरते कमरे के अन्दर गया। फिर दो जवान दिलों के मिलने से जो कुछ होता है वह सब कुछ हो गया।''[6] मास्टर प्यारेलाल और कविता एक-दूसरे से विवाह करना चाहते हैं परन्तु रामलाल अपनी लड़की कविता का रिश्ता मांगेराम के पुत्र रामसिंह से तय करता है। मास्टर प्यारेलाल के सरकारी नौकरी लग जाने तथा उसके

पिताजी द्वारा झोली करके रिश्ता मांगने पर भी रामलाल प्यारेलाल और कविता का रिश्ता नहीं करता। गाँव के एक व्यक्ति कुलदीप के माध्यम से रामसिंह को कविता और प्यारेलाल के सम्बन्धों के बारे में पता चलता है। रामसिंह अन्तर्द्वन्द्व के बावजूद कविता से विवाह करने का निश्चय करता है। कविता से विवाह न होने के कारण मास्टर प्यारेलाल नशा करने लगता है और एक दिन नशे में आत्महत्या कर लेता है। ''कविता से रिश्ता न होने पर मास्टर प्यारेलाल ने गम मिटाने के लिए शराब पीनी शुरू कर दी। जैसे ही उसका नशा कम होता वैसे ही वह फिर शराब चढ़ा लेता .... मास्टर प्यारेलाल ने रामलाल को गाली देते हुए शराब के नशे में अपने आप को छत के पंखे से लटका लिया।''[7] कविता प्यारेलाल की आत्महत्या के लिए स्वयं को दोषी मानती है। कविता सुहागरात के दिन ही रामसिंह को अपने और प्यारेलाल के सम्बन्धों के बारे में बताती है। ''बात यह है कि मैं पहले किसी दूसरे को अपना दिल दे चुकी हूँ ... वह हमारे गाँव के स्कूल में एक मास्टर प्यारेलाल है जिसने मेरे लिए बाद में फाँसी लेकर आत्महत्या कर ली।''[8] सारी बातें जानने के बाद रामसिंह द्वारा स्वीकार कर लिये जाने से कविता आत्मग्लानि महसूस करती है। इसी अपराधबोध के कारण वह अस्वस्थ रहने लगती है। माता-पिता द्वारा झाड़-फूंक करवाने पर भी वह ठीक नहीं होती और एक दिन भगवान को प्यारी हो जाती है। इसके बाद रामसिंह के जीवन में निर्मला का प्रवेश होता है। वे दोनों एक-दूसरे से प्रेम करते हैं और विवाह करना चाहते हैं। निर्मला की माँ उसके प्रत्येक गलत कार्य में सहयोग करती है। माँ के सहयोग के कारण निर्मला के भाई न चाहते हुए भी उसका विवाह रामसिंह से करवा देते हैं। पारिवारिक संस्कार न होने के कारण निर्मला को वैवाहिक जीवन में समस्याओं का सामना करना पड़ता है। रामसिंह और निर्मला दोनों मांगेराम की उपेक्षा करते हैं और खर्च के ताने देते हैं। रामसिंह कहता है कि ''जितने पेंशन तू देता है उससे ज्यादा खर्च करते हैं हम तेरे ऊपर ... और क्या खर्च करें। आज महंगाई के जमाने में तेरी पेंशन में तो तेरे तम्बाकू-तम्बाकू का खर्च भी नहीं चल सकता।''[9] उधर निर्मला के भाई भी अपनी माँ की उपेक्षा करते हैं। अपनी माँ को अकेली छोड़कर किराये के मकान में रहने लगते हैं। मांगेराम भी उपेक्षा से तंग आकर आत्महत्या कर लेता है। ''मांगेराम ने घर की खूँटी से रस्सी डालकर फाँसी ले ली। मांगेराम के बोझ से खूटी टूट गई। परन्तु एक छोटे से झटके से ही मांगेराम के प्राण प्रखेरू उड़ गये।''[10] रामसिंह अपने पिताजी की मृत्यु के बाद नशा करने लगा। निर्मला भी मांगेराम की मृत्यु के लिए स्वयं को दोषी मानती है। इसी अपराध-बोध के चलते निर्मला अस्वस्थ रहने लगती है और शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो जाती है। दूसरी तरफ नरेश की मृत्यु के बाद सुरेन्द्र और उसकी पत्नी कैलाशो की उपेक्षा करते हैं। बीमार होने पर भी उसे डॉक्टर को नहीं दिखलाते। निर्मला की मृत्यु के बाद रामसिंह शराब छोड़कर स्वयं बच्चों का पालन पोषण करता है। ... ''रामसिंह ने दोनों लड़कियों की शादी कर दी। लड़के वाले पाँच व्यक्ति आकर डोली ले गये। रामसिंह का कोई खर्च नहीं करवाया। अब ये दोनों लड़कियाँ शादी के बाद खुश है।''[11] रामसिंह का लड़का महेश पढ़ाई के लिए शहर जाता है। महेश और सोनिया के पिताजी शर्त लगाते हैं कि ''शर्त यह है कि सोनिया के साथ शादी करने के बाद आप गाँव में नहीं जाओगे। यहीं शहर में रहोगे। तुम्हारी अच्छी-सी नौकरी मैं लगवा दूंगा।''[12] महेश सोनिया से विवाह के पश्चात् शहर में रहने लगता है और गाँव नहीं जाता। गाँव में रामसिंह के बीमार होने पर भी महेश उससे मिलने नहीं जाता और उसकी उपेक्षा करता है। गाँव का एक पड़ोसी रामसिंह को महेश के पास छोड़ जाता है। सोनिया की उपेक्षा के चलते रामसिंह को गैरेज में रहना पड़ता है। एक दिन सोनिया और महेश का एक्सीडेन्ट हो जाता है। सोनिया को खून की आवश्यकता है परन्तु उसका पिताजी खून देने से मना कर देता है परन्तु ''एक्सीडेन्ट का पता लगने पर रामसिंह भी हस्पताल में पहुँच गया। डॉक्टर के इन्कार करने पर भी, अनुरोध करके उसने अपना खून सोनिया के लिए दे दिया। ... खून चढ़ने के बाद सोनिया की हालत में सुधार हुआ।''[13] जब सोनिया को पता चलता है कि उसकी जान बचाने वाला रामसिंह है तो उसे अपने व्यवहार का दुःख होता है। वह रामसिंह से माफी मांगती है और कहती है कि ''पिताजी मुझसे गलती हुई। मैंने आपको वैसे ही तकलीफ दी। अब आप ऐसा करो इस गैरिज में न रहकर अन्दर कमरे में चलो।''[14] सोनिया रामसिंह को अच्छे डॉक्टर को दिखलाकर उसका इलाज करवाती है और उसकी खूब सेवा करती है। रामसिंह जल्दी ठीक होकर चलने-फिरने लगता है।

सन्दर्भ-

1. श्री नवलजी, नालन्दा विशाल शब्द सागर, पृ. 1243
2. डॉ. दयाकृष्ण जोशी, उर्वशी : समग्र अध्ययन, पृ. 60
3. डॉ. राजबीर सिंह धनखड़, रिश्ते कैसे कैसे, पृ. 12
4. वही, पृ. 18 5. वही, पृ. 24 6. वही, पृ. 39
7. वही, पृ. 65 8. वही, पृ. 67 9. वही, पृ. 101
10. वही, पृ. 109 11. वही, पृ. 125 12. वही, पृ. 126
13. वही, पृ. 130 14. वही, पृ. 130

शोध-छात्र, हिन्दी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक

युग द्रष्टा संपादक डॉ. माधव सोनटक्के : एक विश्लेषण

अंकुश जाधव

हिंदीत्तर भाषिक विद्वतजनों में डॉ. माधव सोनटक्के का नाम बड़े ही सम्मान के साथ लिया जाता है, क्योंकि इन्होंने साहित्य के लिए एक साहित्यकार, समीक्षक, अनुवादक एवं संचारिका पत्रिका के संपादक के रूप में अपनी भूमिका निभाई है। इसी के साथ-साथ नाटक के ज्ञाता एवं काव्यशास्त्र के श्रेष्ठ अध्यापक के रूप में उनकी ख्याति है। वे हिंदी विभाग, डॉ. बा. आं म. औरंगाबाद के विभागाध्यक्ष है। इसलिए एक तरह से मराठवाडे के हिंदी सर सेनापति कहे जा सकते हैं। ऐसा बहुगुणी व्यक्ति इतने सारे किरदार निभाने वाले एक समाज द्रष्टा भी है।

डॉ. माधव सोनटक्के संचारिका पत्रिका के माध्यम से हिंदीत्तर भाषिक प्रदेश में हिंदीत्तर लेखक, समीक्षक तैयार करने में कर्मशील तो है साथ ही साथ अपने संपादकीय लेखन से तत्कालीन समाज व्यवस्था पर बड़े ही सहज एवं व्यंग्यात्मक रूप में भाष्य करते हैं। जिससे उनके मन की सामाजिक आस्था और समाज की बिगड़ती स्थिति के संदर्भ में रोष की प्रचीती होती है। ओम गुण्डा पुरुष देवाय नमः!, किराणा की होलसेल राजनीति, ओसामा अपने-अपने, ओम टेलिव्हिजनाय नमः! जैसे संचारिका पत्रिका के संपादकीय उसके उत्तम उदाहरण है।

वर्तमान समय में जिस प्रकार राजनीति, समाज व्यवस्था में अराजकता फैल रही है। साधारण मनुष्य अति साधारण बन रहा है, बल्कि जो गुण्डे है, मवाली है, उनकी भाईगिरी बढ़ रही है। वे आज धनवान बन गए है तथा हर क्षेत्र में मार-काट के द्वारा वर्चस्व स्थापित कर रहे है। ऐसे समय उनके कृपा पात्र से लोग कहा से कहा पहुंच रहे है इसको लेकर वे लिखते हैं-''गुण्डा पुरुष देव की कृपा से कई अदने से लोग बड़े-बड़े चुनाव जीत कर मंत्री बन गए, कई फिसड्डी छात्र-छात्राएँ बड़े-बड़े अफसर बन गये...जिन्हें शिक्षा का क ख ग का ज्ञान नहीं वे बड़े-बड़े शिक्षा-संस्थानों के मालिक बन गए और शिक्षा महर्षि लगे, परचून की दुकान वाले उद्योगपति बन गए और फुटपात पर ठेले लगाने वाले बड़े-बड़े मॉल के मालिक बन गए।''[1] इस प्रकार आज अपराधीकरण बढ़ रहा है तथा व्यवस्था ऐसे भ्रष्ट लोगों के हाथ में पहुंच रही है। जिनकी दोगली राजनीति है, उनका दिखाने का चेहरा अलग है, किंतु उनका व्यवहार उसे भिन्न है। जैसे-''राजघाट पर जाकर गांधी बनने वालों की भी कमी नहीं है, सत्य अहिंसा, अनशन अब इंस्टंट फूड की तरह इस्तेमाल हो रहे हैं, अहिंसावादी गांधी धमकियों की भाषा में बोल रहे हैं और जनतंत्र की दुहाई देते हुए तानाशाह की तरह हुक्म देने लगे है।''[2] इस प्रकार समाज के बदलते रूप बड़े ही चिंतनशीलता से वे लिखते हैं।

आज बाज़ारीकरण, निजीकरण एवं भूमण्डलीकरण के कारण भारतीय संस्कृति का दिन-ब-दिन ह्रास हो रहा है, विपन्नता बढ़ रही है, लोग पाश्चात्य सभ्यता के अधीन बन गए है। इस बात को भी इन्होंने 'जानम समझा करो!' इस संपादकीय में अभिव्यक्ति दी है। यथा-''भारत इंडिया बनने जा रहा था, युवा पीढ़ी धोती छोड़ जीन पहन रही थी, रोटी छोड़ बर्गर-पिज्जा खा रही थी, लाज शरम छोड़ 'बोल्ड' हो रही थी, वैलनटाइन डे मना रही थी, ब्लडी इंडिया को छोड़ अमेरिका में बसने की चाहत कर रही थीं, गाँव छोड शहर आ रही थी, खेती बेचकर कारखाने में मजदूर बन रही थी और बैलगाड़ी छोड़कर मोटर में घूम रही थी।''[3] तो दूसरी ओर दिन-ब-दिन नये-नये अविष्कार के कारण ज़िंदगी की पुरानी रोचकता समाप्त हो रही है। फल, फूल, पेड़ भी अब विभिन्न औषधियों से उपज रहे हैं। इस बात का ज़िक्र करते हुए वे दादाजी-नानाजी के समय का आमजन कहाँ? पाँच-दस फीट के नाटे कद के टेस्ट ट्यूब बेबी जैसे पेड़, कई तरह के उर्वरकों और केमिकलों में पले, कॅटीले तारों के फैंस में कैद...निपट अकेली निरस ज़िंदगी...फिर उसमें रस, स्वाद कैसा? रस, स्वाद भी कृत्रिम ऊपर से थोपा गया।''[4]

आजकल धार्मिकता के नाम पर करोड़ों रुपयों का धन बटौरा जाता है। तो दूसरी ओर आम जनता खाने के लिए एक दिन का जुगाड़ नहीं कर पा रही है।''[5] मंहगाई, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार जैसे कई समस्याओं से देश गुज़र रहा। वस्तु के दाम आसमान को छू रहे है। इस मंहगाई पर कड़ा व्यंग्य अपने ख़ास शैली में करते हैं कि-''फिर एक बार मंहगाई ने अपना

विराट रूप प्रकट किया, सोने का दाम बढ़ता ही गया, आटे-दाल ने भी सोने का दाम पा लिया, भारी तनख्वाह पाकर भी गुज़र-बसर में दिक्कते आने लगी, मेवा-मिठाई की बात छोड़ दीजिए अब घर में दाल-रोटी का जुगाड़ भी मुश्किल से होने लगा।''[6]

भारत देश में आजकल अनुसंधान को लेकर बहुत चर्चाएँ होती है तथा पाश्चात्य देशों की तुलना में हम कितने पिछड़ गए है। इसको लेकर विभिन्न सुझाव दिए जाते हैं विश्वविद्यालय, महाविद्यालयों के अध्यापकों को छात्रों को अनुसंधान करने के लिए प्रेरित करने का सुझाव दिया जाता है। उन्हें विश्वविद्यालयों द्वारा मार्गदर्शन बनने की परमिशन दी जाती है किंतु वहाँ भी शोध निर्देशक किस प्रकार शोध छात्रों से काम लेता है। उसे शोध कार्य की मौलिकता से कुछ लेना-देना नहीं होता। ऐसे भी उदाहरण वर्तमान समय में हमें दिखाई देते हैं। इसको लेकर 'व्यावहारिक शोध प्रविधि एवं शोधतंत्र' इस लेख में इन्होंने बहस की है। जैसे-''शोध साधना का पहला चरण है गुरु सेवा, पी-एच. डी. कुछ नहीं गुरु की कृपा प्रसाद होती है, इसलिए जी जान से शोध-निर्देशक-मार्गदर्शन की तन, मन, धन से सेवा कीजिए ...बाज़ार से अपने पैसे से सब्जी खरीदने से लेकर बड़े-बड़े राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय सेमीनारों के लिए उन्हें शोध-निबंधों के साथ ही आवागमन और आवारा गमन का प्रबंध करवा दीजिए, गुरु प्रसन्न होगे और आपको आपका इच्छित फल प्राप्त होगा।''[7]

जिस प्रकार वे समाज के संदर्भ में कबीर के समान खरी-खरी बात करते हैं। उसी तरह किसी विद्वान द्वारा किए गए कार्य की चर्चा भी करते हैं। डॉ. नागनाथ कोत्तापल्ले के मराठी के श्रेष्ठ कवि, कथाकार, आलोचक के संदर्भ में 'कर्मशील रचनाकार डॉ. नागनाथ कोत्तापल्ले' इस संपादकीय में लिखते हैं-''कोत्तापल्ले की कविताएँ भी कहानियों की तरह अंतर्मन पर गहरी छाप छोड़ जाती है, 'मुडस' नामक उनका एक मात्र कविता संकलन है..। जो जीवनानुभव से आप्लावित ये कविताएँ अपनी लघुता में अपार आशय सघनता को लिए हुए है, इर्दगिर्द फैले विषम परिवेश से टकराते...टूटते... बिखरते हुए भी जीवन के प्रति एक अटूट आस्था का स्वर उनमें सुनाई देता है।''[8]

इस तरह डॉ. माधव सोनटक्के संचारिका पत्रिका के संपादकीय लेख के माध्यम से समाज में घटित तत्कालीन घटनाओं पर बड़े ही सूक्ष्मता से प्रकाश डालते हैं। उनके हर अंक की संपादकीय लेख एक तरह से समाज की आलोचना होती है। जिसमें उनकी व्यंग्यात्मक शैली के दर्शन होते हैं।

संदर्भ-

1. संचारिका, जनवरी-मार्च 2013
2. संचारिका, अक्टूबर-दिसंबर 2011
3. संचारिका, जनवरी-मार्च 2007
4. संचारिका, जनवरी-मार्च 2012
5. संचारिका, अप्रैल-जून 2012
6. संचारिका, अक्टूबर-दिसंबर 2009
7. संचारिका, अप्रैल-जून 2013
8. संचारिका, अप्रैल-जून 2010

शोधार्थी-हिंदी विभाग, डॉ. बा. आं. म. वि. औरंगाबाद

विकास, विस्थापन और स्त्री

स्नेहलता मुर्मु

भारत को उन्नति और विकास के रास्ते पर आगे बढ़ाने के लिए बड़े-बड़े उद्योगों की स्थापना की गयी। महानगरों के विकास सिंचाई के लिए बड़े-बड़े बाँधों का निर्माण किया गया। उद्योगों के लिए कच्चा माल प्राप्त करने के लिए खनिजों के उत्खनन की प्रक्रिया शुरू हुई। तथाकथित विकास का सबसे बड़ा दुष्परिणाम जो सामने आया वह है, कि लाखों लोगों को घरों से बेघर होना पड़ा। इसके साथ ही वन्य जीव के संरक्षण एवं अभ्यारण्य जैसी योजना का भी सरकार ने बड़े पैमाने पर अधिग्रहण किया। ऐसी स्थिति में विस्थापितों की संख्या में वृद्धि होना स्वाभाविक था। उद्योगों की स्थापना के कारण देश भर के कुटीर उद्योग-धंधे नष्ट हो गये। इससे बेरोजगारी बढ़ी और जिन लोगों की भूमि का अधिग्रहण किया गया, उन्हें पर्याप्त मुआवजा नहीं दिया गया। जमीन के बदले कुछ लोगों को कारखानों में अकुशल श्रमिक के रूप में काम दिया गया, परन्तु उन्हें प्रशिक्षित करने की दिशा में कोई कारगार कदम नहीं उठाया गया। पुनर्वास की शर्त्तों से अनभिज्ञ होने के कारण लोगों का शोषण होता रहा। सरकार उन्हें जमीन के बदले जमीन नहीं देती निम्न दर पर उनकी जमीन का अधिग्रहण कर उन्हें बेदखल किया जाता है और न्यूनतम मुआवजा दिया जाता है। जिसके कारण वे भूमिहीन और बेरोजगार हो जाते हैं।

विस्थापन की समस्या एक वैश्विक समस्या है जैसा कि ''अमेरिकी सर्वोच्च न्यायालय ने चेराकियों के भूमि स्वामित्व को प्रदान की। किन्तु राष्ट्रपति एंड्रयू जेक्सन सर्वोच्च न्यायालय की भावनाओं से सहमत नहीं था। उसने 1830 ई. में 'इंडियन रिमूवल एक्ट' बनाया। सरकारी बजट मे 'इंडियन रिमूवल' के लिए विधिवत् धनराशि अंकित की जाती थी। 1837 ई. में फ्रीक जनजाति के चौदह हजार लोग विस्थापित किए गये। 1835-1840 के बीच सेमिनोल जनजाति को उजाड़ने में चार से छह करोड़ डालर खर्च किए गये। सोलह हजार चिराकी जनजाति के लोगों को सेना ने घेरकर कैम्पों में बन्दी बनाकर रखा। पूरी गर्मी बीत जाने के बाद, बरसात के दिनों में 1838 ई. में उन्हें 1500 किलोमीटर की यात्रा पर जबरन भेज दिया गया। लकड़ी की खच्चर गाड़ियों में उनका सामान लाद दिया गया। लगभग आठ हजार बच्चे, बूढ़े, बीमार महिलाएँ इस यात्रा में मारे गये।''[1]

प्रत्येक सरकार की अपनी विस्थापन नीति होती है जिसके अनुसार विस्थापितों को मुआवजा दिया जाता है। ''विस्थापित होने के एवज़ में नौकरी लगभग प्रत्येक जगह परिवार के एक सदस्य को ही दी जाती है परिणामस्वरूप परिवार के अन्दर विषमता पैदा होती है स्त्रियों के पुनर्वास के बारे में शायद ही सोचा जाता है, विस्थापन का सबसे बुरा असर इन्हीं पर पड़ता है। स्त्रियों के पास जमीन की मिलकीयत नहीं होती है। परिवार में कई बार पुरुषों को मुआवजा मिलने पर इसके अपव्यय की स्थिति में परिवार चलाने का पूरा भार इन पर ही पड़ता है। नए पुनर्वास स्थल पर पीने के पानी, जलावन की लकड़ी जैसी रोजमर्रा की समस्याओं को भी इन्हें ही झेलना पड़ता है।''[2]

प्रायः देखा जा सकता है कि ''पुनर्वास की योजना किसी भी कम्पनी द्वारा नहीं बनाई जा रही और न सरकार ने इस दिशा में कुछ कार्य किया है। पुनर्वास के लिए जो भी योजना इधर बनाने की बात चल रही है, चाहे वह रोजगार के माध्यम से हो या जमीन के बदले जमीन अथवा मुआवजे की राशि के रूप में हो, उसमें महिलाओं का कोई जिक्र ही नहीं है।''[3] इसके साथ यह भी देखने को मिलता है कि ''अगर किसी महिला की जमीन जा रही हो और उसका वारिस कोई पुरुष नहीं हो तो भी कोयला खदानों में उस महिला को नौकरी नहीं मिल सकती। अगर वह विधवा हो और घर में कमाने वाला कोई अन्य पुरुष न हो, तभी वह नौकरी पा सकती है, हालांकि यहाँ औरत मर्द के बराबर ही खेतों में काम करती है पर खेत चले जाने पर वह न तो नौकरी में साझेदार है, न मुआवजे में। अगर सरकार भी कहीं जमीन बाँटती है तो उसका पर्चा भी मर्दों के नाम से बनता है। आदिवासी औरतों को तो ऐसे ही उनमें सामाजिक नियम के तहत सम्पत्ति का अधिकार ही नहीं है। वह जीवित रहने तक यदि कुंआरी, परित्यक्ता या विधवा हो तो पिता के घर में रहने-खाने की

हकदार ज़रूर है पर सम्पत्ति की हकदार नहीं।''[4] पुरुष प्रधान समाज होने के कारण समाज महिला के साथ सौतेला व्यवहार तो करता ही है। सरकार की नीति भी कुछ अच्छी नहीं रही है। यही कारण कि समाज अपने अनुसार नियम और कानून की व्याख्या करता है।

कभी-कभी तो कानून के उल्लंघन में तनिक भी विचलित नहीं होते जैसा कि संजीव लिखित 'धार' उपन्यास की मैनाके साथ होता है। मैना को सामाजिक कुप्रथा 'बिटलाहा' जैसे प्रथाओं का सामना करना पड़ता है। उसकी विवशता को सहज ही समझा जा सकता है- ''बिटलाहा तो वे करेंगे, भले ही सरकार ने इसकी मनाही कर दी हो।''[5] 'बिटलाहा' जैसी कुप्रथा से कई आदिवासी प्रभावित होते रहें हैं, जिससे मजबूरन विस्थापित होने को विवश हुए हैं। सरकार की नकारात्मक नीति ने भी विस्थापितों की संख्या को निरंतर बढ़ाया है। विस्थापितों की सहमति लिए बिना छल से उनकी सम्पत्ति को हड़पना जैसे सरकार की नीति बन गई है तभी तो 'डूब' की माते कहती हैं ''यह कहाँ का न्याय है। यह कैसी उल्टी रीति चलाई है सरकार ने। औने-पौने दाम लगाकर कानून का भय दिखाकर हमसे हमरी जमीन हड़पी, हमें बिना बताए हमसे सलाह किए, बिना हमरी मंशा जाने बिना, हमसे हाँ करवाए, हमरे मुँह में अपने बोल डाल लिए। कह दिया दुनिया से कि हम अपनी जमीन बेचने को तैयार है।''[6] इस प्रकार की प्रवृत्ति लगभग सर्वत्र देखी जा सकती है। भू सम्पदा से तो बेदखल होते ही हैं, इज्जत आबरू बचाना भी मुश्किल हो जाता है तभी तो आदिवासी औरत कहती हैं-''बस जिनगी (जिन्दगी) ढँकल है जंगल की बचल-खुचल, कटल-फटल पातर-सी पतली परत से। बाकी तो गाछ-बृछ, लतर-पतर-विहीन हो रहल है सब जंगल! हमरी जिनगी, सपाट बंजर धरती-सी, बिन जोते रह जाता है।''[7]

विकासवादी योजना जैसा कि विविध उद्योगों, कारखानों और परियोजनाओं के लिए भूमि अधिग्रहण के परिणाम स्वरूप भूमिहीन होते ''रोजगार के तलाश में पुरुष बड़े शहरों में चले जाते हैं और औरतें बच्चों के साथ साल में नौ महीने अकेली घर-बाड़ी और परिवार को संभालती है अथवा अधिकांश जंगलों से लकड़ी लाकर बेचती हैं। मर्द केवल खेती के लिए घर लौटते हैं मगर महिलाओं एवं बच्चों को जंगल से किसी भी तरह की चीज या वनोपज लाने जाना बिल्कुल मना है। यह आदिवासियों के इतिहास में पहली बार देखने को मिल रहा है कि गाँव के बाजार बन्द हो रहे हैं क्योंकि लोगों को जंगल से वनोत्पादन लाने के लिए मना कर दिया गया है, जो उनके जीविकोपार्जन का एक सबसे महत्त्वपूर्ण स्रोत है। इन जीवनदायी चीजों को वे न खरीद ...और न ही बेच पा रहे हैं। इससे उनकी आर्थिक व्यवस्था चरमरा गई।''[8] हम सभी जानते हैं कि आदिवासी प्रकृति प्रेमी रहे हैं। वे प्रकृति का दोहन के साथ संरक्षण भी करते हैं। लेकिन गलत वन नीति के कारण इन आदिवासियों को जंगल जाने से रोका जाता है जिससे उनकी आर्थिक स्थिति तो प्रभावित होती ही है, लेकिन जंगल को संरक्षण देने वाला भी नहीं बचा है। जिससे जंगल का क्षरण स्वाभाविक रूप से होने लगा।

आदिवासी समाज की अपनी अलग सामाजिक संरचना और व्यवस्था रही है। यही कारण है कि ''आदिवासी क्षेत्रें में स्थिति थोड़ी अलग है वहाँ रोजगार की तलाश में भारी संख्या में मर्द औरतों के जोड़े सुदूर प्रान्तों में कभी अपने आप चले जाते हैं या कभी दलालों द्वारा ले जाए जाते हैं। इसके विपरीत चायबासा या संथाल परगना क्षेत्रों से अकेली औरतों के झुण्ड के झुण्ड (उनमें प्रायः एक पुरुष ही होता है जो उनके सामानों तथा रसोई की देख रेख करता है) ट्रकों में लोडिंग का काम करने के लिए निकल पड़ते हैं।''[9]

भारत भी विकासवादी दौड़ में शामिल है इसमें भारतीय समाज पुरुष और महिलाओं की समान भागीदारी है। भारतीय संस्कृति में महिला को अर्द्धांगिनी माना गया है और भारतीय समाज के आधे हिस्से ने अपने कर्त्तव्यों का बखूबी निर्वाहन किया है। ऐसी स्थिति में महिलाओं के इतर देश की परिकल्पना बेईमानी होगी। भारतीय समाज में महिलाओं को भले ही ऊँचा दर्जा दिया गया है लेकिन व्यावहारिकता में झूठा प्रतीत होता है। महिलाओं को समाज की सामान्य ज़िन्दगी से उन्हें मन्दिरों में पहुँचा दिया जिसे देवी का स्थान तक दे दिया गया। हम जानते हैं कि देवी हो या देवता हमें कुछ न कुछ देता है ऐसा हमें विश्वास है। वह हमसे लेता नहीं है, जिस प्रकार माँ बच्चों से कुछ आशा नहीं करती बल्कि वह हमेशा बच्चों के लिए चिंतित रहती है। सर्वविदित है कि परिवार में औरत ही बच्चों की परवरिश करती है बच्चों को प्राथमिक शिक्षा भी माँ ही देती है ऐसे में समाज के आधे हिस्से को नजरअंदाज करके चलना उसके साथ अन्याय ही होगा।

आज के युग में विस्थापन हमारे देश ही नहीं विश्व के लिए एक ज्वलंत समस्या बन गयी। विकासवादी परियोजनाओं ने कईयों को विस्थापित कर पशुवत जीवन जीने के लिए विवश कर दिया है। ऐसे भी विस्थापन से व्यक्ति और समाज तो प्रभावित होता ही है, लेकिन विस्थापन से महिलाओं की स्थिति और भी बदतर हो जाती है। आर्थिक तंगी उन महिलाओं की ज़िन्दगी को बर्बाद करती ही है, इसके साथ ही उसे समाजिक सुरक्षा से भी वंचित करती है। जैसा कि नर्मदा

में इंदिरा सागर परियोजना के परिणाम स्वरूप एक विस्थापित की पीड़ा को देखा और अनुभव किया जा सकता है- ''जब मैं इस जलाशय के बीचों-बीच एक नाव से जा रहा होता हूँ तो मुझे पता होता है कि मेरे ठीक नीचे इसी बिन्दु पर मेरा गाँव, मेरा घर और मेरी खेत स्थित है। जिन्हें मैंने हमेशा के लिए खो दिया है इस समय मेरी छाती दुःख से फटने लगती है। मैं इस दर्द को नहीं सह सकता।''[10] इस प्रकार उपरोक्त कथन से विस्थापन की पीड़ा को अनुभव किया जा सकता है।

अतः यह कहना अतिशयोक्ति नहीं कि विस्थापन अपने आप में विकट समस्या रही है। यह समस्या विकासवादी परिणामस्वरूप रही हो या प्राकृतिक आपदा के कारण रहा हो। यह समस्या हृदय विदारक रही है लेकिन उसमें भी महिलाएँ सबसे अधिक पीड़ित रही है ।

सन्दर्भ-

1. रणेन्द्र, ग्लोबल गाँव के देवता, पृ. 45
2. रमेश शरण, (विस्थापन की विभीषिका) झारखण्ड इन्साइक्लोपीडिया
3. रमणिका गुप्ता, स्त्री विमर्शः कलम और कुदाल के बहाने, पृ. 129
4. वही
5. संजीव, धार, पृ. 34
6. वीरेन्द्र जैन, डूब, पृ. 242
7. रमणिका गुप्त, मौसी, पृ. 147
8. स्टेन स्वामी (आलेख : प्रभात खबर) आदिवासी दरिद्रता की दर्द भरी कहानी
9. स्त्री विमर्शः कलम और कुदाल के बहाने, पृ. 130
10. शशि सक्सेना (अभियोग पत्र अनुवाद)- कहाँ गये वे लोग : विकास और विस्थापन

शोधार्थी, हिन्दी विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची

कविता

मुखौटे

डॉ. मंजू अग्रवाल

बनते थे मुखौटे
तरह-तरह के
बिकते थे मेलों में
पहने जाते तीज त्यौहारों पर
हंसने-हंसाने व डराने के लिए
विलुप्त हो जाते
अगले त्यौहारों तक

मानव आज का
बना रहा मुखौटे कई
अंतस के कोने में
पल-पल बदल रहा मुखौटे
बिना तीज-त्यौहार के
खोने लगा असली चेहरा भी
मुखौटों की आड़ में

विलुप्त होता गया अन्तर
चेहरे व मुखौटों में

ख्वाहिश

अन्तहीन ख्वाहिशों के
अथाह सागर में
लगा रहा नित गोते
हर डुबकी में ढूँढ
रहा मोती अनेक
एक-एक मोती पाता गया
लेकिन अनंत की चाह में
मन का सुकून खोता गया

लालसा का कुआँ
खुदता गया
सागर मन्थन बढ़ता गया
मन को उद्धेलित करता गया

अमृत को पाने की चाहत में
विषपान करता गया
अपनी ही ख्वाहिशों के
नागपाश में जकड़कर
जीवन का अन्त
करता गया।

नई दुनिया अपार्टमेन्ट, आगरा रोड, अलीगढ़

'सपने खुली निगाहों के' में यथार्थबोध

श्रीमती रेखा रानी

आधुनिक हिन्दी साहित्य में ग़ज़ल एक नई विधा के रूप में पल्लवित-पुष्पित हो रही है। वह अपने रोमांस व महफिल के संकुचित दायरे से निकलकर जीवन के प्रत्येक पहलू से जुड़ गई है तथा अन्य विधाओं की तरह साहित्य में भी अपना महत्त्व एवं वर्चस्व स्थापित करने का सार्थक प्रयास कर रही है । इस विधा को समृद्ध करने का सार्थक प्रयास श्रद्धेय श्री माधव कौशिक जी ने अपनी प्रतिभा के माध्यम से किया। इनका ग़ज़ल संग्रह 'सपने खुली निगाहों के' इस दिशा में किए गए उनके सार्थक प्रयास का परिचायक है।

माधव कौशिक का जन्म हरियाणा के भिवानी जिले में 1 नवम्बर 1954 को हुआ था। साहित्यिक पृष्ठभूमि के न होते हुए भी इनका साहित्य सृजन काफी व्यापक है। इन्होंने अनेक ग़ज़ल-संग्रह, नवगीत संग्रह, खण्डकाव्य, कहानी-संग्रह तथा बाल साहित्य की रचना की। इनकी इसी प्रतिभा के कारण ही इन्हें अनेक साहित्यिक सम्मानों से सुशोभित किया जा चुका है। सम्प्रति आप साहित्य अकादमी चण्डीगढ़ में सचिव पद पर कार्यरत हैं। इनका ग़ज़ल संग्रह 'सपने खुली निगाहों के' साहित्य जगत में अग्रगण्य है।

प्रस्तुत ग़ज़ल-संग्रह 'सपने खुली निगाहों के' का प्रकाशन 2003 में लक्ष्मीनारायण शर्मा, सत्साहित्य भण्डार, दिल्ली से हुआ। इस ग़ज़ल-संग्रह में माधव जी ने यथार्थ का बोध करवाते हुए समाज का जो चित्र हमारे सामने प्रस्तुत किया है, वह पूर्णरूपेण सामाजिक यर्थाथ को अभिव्यक्त करता है। उन्होंने ज्वलंत मुद्दों को अपने ग़ज़ल-संग्रह में सूत्रबद्ध रूप में प्रस्तुत किया है ताकि समाज उनका लाभ उठाकर अपने जीवन एवं मूल्यों को सही दिशा और दशा प्रदान कर सकें।

माधव जी राजनीतिक परिदृश्य का यथार्थ चित्रण करते हुए चुनावों के समय नेताओं के द्वारा लोगों से किए झूठे वायदे तथा विकास के लिए दिखाए गए सपनों की पोल खोलते हैं। वे नेता लोग समाज की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति करने की बजाय निरर्थक बातों को महत्त्व देते हैं लेकिन मतदाता मतदान के समय उनकी आँखें खोल देते हैं। चुनाव में हारने के बाद भी वे अपनी कुटिलता का त्याग नहीं करते। आजकल राजनीति का अर्थ तथा स्वरूप बिना हड़ताल, कर्फ्यू, आन्दोलन पूरा नहीं होता ऊँचे-ऊँचे पदों पर बैठे लोग अपने फायदे के लिए उन लोगों की ही बलि चढ़ा देते हैं, जिनकी हिफाजत का दायित्त्व उन पर है। राजनीति का मुखौटा आज यही रह गया है। कवि कहता है-"कलियों की हिफाजत के लिये काँटे उगाओं/गुलशन में गुलाबों की नज़र ठीक नहीं हैं/हड़ताल कहीं, हिंसा कहीं, कर्फ्यू कहीं पर/अब मुल्क में कोई भी नगर ठीक नहीं है।"[1]

इस तरह की राजनीति करने वाले नेताओं का भी एक दिन पर्दाफाश होगा। इसी उम्मीद से माधव जी उनको सचेत करते हुए कहते हैं कि धोखे की राजनीति व अराजकता का सफाया करने के लिये एक दिन बदलाव की क्रान्ति होगी। उस बदलाव की क्रान्ति में सभी राजनीति बुराइयों का अन्त होगा। यथा-"जिस दिन सूरज बदला लेगा खौफनाक अंधिया करों से/उस दिन चीख सुना देगी, सत्ता के गलियारों से/इतिहासों को लिखने वाला कलम मयस्सर नहीं अगर/लिखने वाले लिख देते हैं लोहे के औजारों से।"[2]

क्रान्ति का आह्वान करते हुए कवि कहता है कि इस गली-सड़ी व्यवस्था को समाप्त होने पर एक न सुबह का आगमन होगा जिससे सत्ता-परिवर्तन निश्चित रूप से होगा। इस दिशा में पहल करने का यदि साहस रखोगे तो निज़ाम बदलने के लिए तुम्हारे दो हाथों के साथ लाखों हाथ मदद के लिए आगे आयेंगे कवि इस भाव-सत्य का यथार्थांकन करते हुए कहता है- "अंधेरी रात के ढलने का इन्तजाम करो/सुबह की किरण के निकलने का इन्तजाम करो/तुम्हारे साथ फिर हो जाएँगे को लाखों/अगर तुम निजाम बदलने का इन्तजाम करो।"[3]

कहने को तो प्रत्येक पाँच साल में सत्ता-परिवर्तन होता है लेकिन क्या समाज के जीने का स्तर तथा व्यवस्था में कोई परिवर्तन होता हैं? साहित्यकार अपनी रचना में जिस आदर्श समाज का चित्र प्रस्तुत करता है, वह इस यर्थाथ समाज से बिल्कुल अलग है। साहित्यकार की रचना में समाहित विचारों के अनुसार जब समाज का स्वरूप नहीं बदलता तो वह बेचैन

होकर पुकारने लगता है-"बुरा के अगर करवट फनकार बदलता है/इक रात में दुनिया का आकार बदलता है/बदले ना अभी तक भी हालात जमाने के/कहने को निजाम हर बार बदलता है।"[4]

सियासी चालें स्वार्थ पोषित होती है। देशभक्त देश की रक्षा के लिए बलिदान देते हैं तथा युद्ध जीतते हैं लेकिन स्वार्थी नेता सिर्फ अपने फायदे के लिए उनके बलिदानों पर पानी फेर देते हैं। जिस प्रकार भूकम्प में केवल घर की नींव ही ज्यादा क्षतिग्रस्त होती है व दरवाजे यथावत् रहते हैं उसी प्रकार देश की रक्षा करते हुए अपना सर्वस्व न्योछावर करने वाले सैनिक नींव के पत्थर की तरह मजबूती तथा धैर्य का परिचय देते हैं परन्तु नेता लोग अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए उनके बलिदानों को मिट्टी में मिला देते हैं-"दरो दीवार रोशनदान खिड़की यत्रवत् होगे/मगर भूकम्प में सब नींव के पत्थर ही छत होंगे/उधर सरहद पर हम अपने लहू से नाम लिखेंगे/इधर स्याही से संधि पर तुम्हारे दस्तखत होंगे।"[5]

देश विभाजन की त्रासदी भी चन्द स्वार्थी लोगों की संकीर्ण मानसिकता का परिणाम है। जिसमें असंख्य निर्दोष लोगों को घर छोड़ना पड़ा तथा अपनी जान गँवानी पड़ी। इससे भी समस्याओं का समाधान नहीं हुआ। आज भी लगातार पड़ोसी देशों से प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष संघर्ष जारी है क्योंकि जो निर्णय उस समय लिया गया वह सबके हित को ध्यान में रखकर नहीं लिया गया। उसमें स्वार्थपरता का भाव स्पष्ट रूप से दिखाई देता है-"रिश्तों का मुरदा हो जाना ठीक नहीं होता है लेकिन/अपनी खुदगरजी की खातिर रिश्तों का व्यापार गलत है/तब तो बेमतलब मुद्दों पर अपने घर को बाँट लिया था/बरसों बाद समझ में आया अब आगँन में दीवार गलत है।"[6]

इसी सन्दर्भ में माधव जी ने अन्यत्र भी कहा है -"कुछ लोगों को खुली हवा की इतनी सख्त ज़रूरत थी/इक पूरी की पूरी पीढ़ी जीते जी दफनाई है/भाग दौड़ के इस आलम में राम कहानी कौन सुने/यही सोचकर दीवारों को अपनी व्यथा सुनाई है।"[7]

कवि ने राजनीतिक परिदृश्य के समान ही सामाजिक यथार्थ को स्पष्ट रूप से काव्य में व्यक्त किया है। समाज में फैला देह-व्यापार दलाली तथा वेश्यावृत्ति जैसे घृणित विषयों पर कवि ने लेखनी चलाई और लोगों में चेतना लाने का सफल एवं सार्थक प्रयास किया। यह समाज कहाँ जा रहा है तथा कहाँ तक पहुँचेगा? इसका अनुमान शायद ही किसी को होगा। आज समाज का कुत्सित चेहरा सामने आ रहा है। संस्कृति व संस्कारों को दरकिनार करते हुए लोग खुलेआम जिस्मों का सौदा करने में जरा भी संकोच नहीं करते-"तुमने क्या सोचा था आने से पहले..... गली में/जिस्मानी ताकत के नुस्खे बिकते हैं बीमार गली में/पहले यहाँ-वहाँ लुक छिपकर होता होगा सिर्फ घरों में/अब तो सरेआम जिस्मों का होता है व्यापार गली में।"[8]

सामाजिक उत्पीड़न का नज़ारा इससे भयानक और क्या होगा जब गर्भ में निर्दोष कन्या शिशु की हत्या करते हुए भी इस समाज के खूँखार दानवों को थोड़ा-सा भी अफसोस नहीं होता है लेकिन अपने आपको मानवता के उपासक बताते हैं। औरत पर जुर्म तो सदियों से होते आ रहे हैं लेकिन अत्याधुनिक युग में इसका अहसास माधव जी को भी पहले नहीं होगा। यथा-"काजल की बस्ती के उजले बाशिदों/कालिक की परतों की चिन्ता करते हो/गर्भ अवस्था तक में हत्या करते हो/मानवता सा प्यार अधूरा करते हो।"[9]

माधव जी के ग़ज़ल-संग्रह में समाज में फैली बुराइयों की र्तिती परतें और भी भयानक चेहरा प्रस्तुत करती हैं। गज़लकार समाज में परिवर्तित होने वाले परिवेश को एक दिन का असर नहीं मानते-"मुद्दतों की वारदातों का असर होता है दोस्तों/चार छः दिन में शहर बीमार हो सकता नहीं/इस कदर बढ़ते हुए नफरत के खूनी भर में/आदमी सा आदमी को प्यार हो सकता नहीं।"[10]

ग़ज़लकार ने समाज में फैली अव्यवस्था तथा असमानता पर भी अपनी चिन्ता व्यक्त की है। वे कहते हैं कि जब खेत की रखवाली करने वाला ही खेत को खा जाए तो इंसान किस पर विश्वास करेगा। नेता लोग रोज घोटाले करके देश को दीमक की तरह खोखला करते जा रहे हैं तथा पुलिस विभाग दोषियों का साथ दे रहा है। अमीर लोग गरीबों का शोषण कर रहे हैं। अतः जब रक्षक ही भक्षक बन जाए तो समाज का जो आना प्रस्तुत होगा वह शायद ऐसा ही होगा-"जब ये तय है खेत को खाना है इक दिन बाड़ ने/फिर यहाँ चौबीस घण्टों की रखवाली न हो/ये कहाँ का न्याय कि कुछ लोग तो ले जाएँ चमन,/और कुछ के भाग्य में सुखी हुई डाली न हो।"[11]

इस स्वार्थ संसार में कोई भी इंसान विश्वास करने के लायक नहीं रहा है। इतनी बड़ी ज़िन्दगी इस तरह डर तथा अविश्वास के वातावरण में कैसे पूरी होगी। प्रत्येक पल इंसान को अपने सपनों का संसार उजड़ने का डर रहता है। इसी मनोभाव को व्यक्त करते हुए माधव जी कहते हैं- "मौत आने तक यूँ ही करोती रहेगी ज़िन्दगी,/ज़िन्दगी कुछ रोज की मेहमान हो तब भी कहे,/....हैं एक टक सपनों को भूखे भेड़िये/इस शहर में एक भी इन्सान हो, तब भी कहें।"[12]

यह समाज की विडम्बना ही कही जाएगी कि महलों

में रहने वालों को एक पल भी चैन की नींद नसीब नहीं होती है। जीवन की आपा-धापी में इंसान अपनों का अपनापन, स्नेह आदि सब खोता जा रहा है। यह तो अति ही हो गई कि किसी की मौत का मंजर भी लोगों को इतना पत्थर दिल बना देता है कि उनमें उतनी हलचल भी नहीं होती, जितनी तूफानों के आने पर कम से कम पत्थरों में भी हो जाती है-"महलों में रहने वालों को नींद मयस्सर नहीं अगर/आसमानों की छत के नीचे सो जाते है बेघर लोग/उधर किसी की लाश कफन की खातिर चीखें मारे है/इधर किनारे गुमसुम बैठे देख रहे हैं मंजर लोग।"[13]

बदलते परिवेश पर चर्चा करते हुए माधव जी कहते हैं कि आज हमारे लिए हर रिश्ते, हर त्योहार, रीति-रिवाज और परम्परा के मायने बदल गये हैं। हमारे पूर्वजों की वे युग मर्यादित परम्पराएँ एवं संस्कार हमें बन्धन लगती हैं। हम लगातार उनकी अवमानना भी करते हैं। जिन पर उनके युग का सम्पूर्ण ढांचा खड़ा था तथा सब कुछ मर्यादित था । शुक्र है हम उनके द्वारा बनाए कुछ नियम तो लागू कर रहे हैं, नहीं तो ये रिश्तों के किले उस बदलाव की आँधी में ढह भी सकते थे-"पुरखों की आवाज़ें सुनकर चले सदा विपरीत दिशा में/यदि हम युग मर्यादित होते साथ हवा के बह सकते थे/यह तो अच्छा हुआ मात्र कुछ शब्दों के अनुबन्ध उड़ हैं/रिश्तों के मजबूत किले भी उस आँधी में ढह सकते थे।"[14]

पहले त्योहारों का अर्थ आपसी मेल-जोल खुशी बाँटने तथा भाईचारे से लिया जाता था । अब उसी धर्म की आड़ में स्वार्थी लोग अपने तुच्छ लक्ष्यों की प्राप्ति करते हैं। धर्म के नाम पर साम्प्रदायिक दंगे करवाते हैं। नफरत की फसल उगाते हैं। अपनेपन से दूसरों को गले लगाने की बजाय दिखावे का व्यापार करते हैं -"सर्वधर्म संभाव, मानने वालों में /नफरत की दीवार, यह कैसी होली है/भावुकता से गले लगाना भूल गये/चेहरे पर इन्कार, ये कैसी होली है।"[15]

हर तरफ इन्सानों में सामाजिक बन्धन रस्म-रिवाजों से बाहर निकलने की तड़प तथा होड़-सी लगी हुई है। सिर्फ अपने मन की आग को शांत करने के लिए लोग अनेक यत्न करते हैं। दूसरों की भावनाओं की कद्र करे तथा उसकी तड़प व जलन को स्वयं सहन करें। माधव जी इसी यथार्थ परिप्रेक्ष्य का वर्णन करते हुए कहते हैं-"रस्म रिवाजों के बन्धन से बाहर है मस्तानी आग/लावा बनकर फूट पड़ेगा इक दिन तो जिस्मानी आग,/अपने-अपने मन की ज्वाला में सबके सब जलते हैं,/लेकिन मजा तभी आता है जब झेले बेगानी आग।"[16]

माधव जी आधुनिक परिप्रेक्ष्य में यथार्थ का वर्णन करते हुए व्यक्ति के व्यक्तिगत सुख-दुख, आशा-निराशा, कुण्ठा, अवसाद तथा संत्रास का वास्तविक वर्णन करना नहीं भूले। इस नीरस संसार की नश्वरता का आभास ग़ज़लकार पग-पग पर करवाता हुआ इंसान को आगाह करता है कि सब कुछ समाप्त प्रायः हो गया है। इन्सानियत, प्यार, स्नेह का आँचल तथा रिश्तों में माधुर्य नहीं रहा। आज बची है तो केवल संकीर्ण विचारों की शुष्कता जो इंसान को दिन-प्रतिदिन मशीनी औजारों की तरह बनाती जा रही है। उनमें मानवीय हलचल समाप्त हो रही हैं। देखिए-"आदमी के .... में पहले की हलचल कहाँ/दूसरों के दर्द से इन्सानियत घायल कहाँ,/सबके सब अपने बदन के .... में कैद हैं,/कोई दरवाज़ा शहर में अब बिना साँकल कहाँ।"[17]

इसी कड़ी को आगे बढ़ाते हुए माधव जी कहते हैं कि इस कल-पुरजों की दुनिया में इन्सान यन्त्रवत् कार्य करता हुआ, सुख-समृद्धि व ऐश्वर्य की वस्तुओं का निरर्थक संग्रह कर रहा है। इतनी जी तोड़ मेहनत करने के बावजूद भी उसे कही पर भी अपनेपन का अहसास नहीं होता। व्यक्ति झूठ के सहारे ज़िन्दगी काटने को मजबूर हो गया है। सामाजिक यथार्थ की अभिव्यक्ति करते हुए इन्होंने कहा है-"हमने हर बार झूठ बोला है/कभी गीता, कभी कुरान लिये/घर का अहसास मिल नहीं पाया/उम्र भर सैकड़ों मकान लिये।"[18]

प्रतिक्षण इन्सान तनावों के कारण एकांत प्रिय होता जा रहा है। उसे किसी से कोई उम्मीद नहीं है। जिस प्रकार मिट्टी के घर के अस्तित्व को बहते हुए दरिया का पानी नष्ट कर देता है, उसी प्रकार बेमेल हम सफर ज़िन्दगी में विचारों की असंगतता के चलते हमारा जीवन दूभर कर देता है- "कोई बढ़ते हुए दरिया के कानों में कहे जाकर/बहुत मुश्किल से मिट्टी का मकां तैयार होता है/बिछुड़ जाओं तो सारी मुश्किल आसान हो जाये,/सफर में साथ चलना और भी दुश्वार होता है।"[19]

आज परिवार में एकाकीपन और बिखराव की स्थिति पैदा हो गई है। हमारा जीवन चाहे कितना ही लम्बा क्यों न हो लेकिन यदि जीवन में सूनापन तथा अकेलापन है तो एक-एक पल वर्षों के बराबर लगेगा इसलिए माधव जी कहते हैं कि तन्हाई जीवन को दिशाहीन एवं निरर्थक बना देती है, चाहे आस-पास कितना ही कोलाहल क्यों न हो, अकेलापन व्यक्ति के जीवन को कुंठा व अवसाद से भर देता है। इस कटु यथार्थ को व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा है-"सूनी पथराई आँखों में कैसे बिम्ब उभारे कोई/जीवन की सूनसान डगर पर/आखिर किसे पुकारे कोई,/जिसे उम्र का कोलाहल भी कभी नहीं छू पायेगा/लम्बे चौड़े जीवन से भी अधिक बड़ी है

तन्हाई।"[20]

जीवन की इस रफ़्तार....अपने-आप को परिपूर्ण नहीं मानता संघर्षों से भरी ज़िन्दगी में मुश्किलों का आना महज एक बहाना ही है क्योंकि किसी भी कार्य को करने से पहले ही उसकी समस्याओं तथा कठिनाइयों से डर कर पीछे हटना, फिर असफल होकर ठोकर .... किस्मत को कोसना एक अधूरेपन की पहचान ही है-"संघर्षों की उबड़-खाबड़ धरती सिर्फ बहाना है,/उसका कोई क्या कर लेगा जिसको ठोकर खानी है,/सबके चेहरे, सबकी यादें, सबके नाम मिटाकर भी/मन में किसी अधूरेपन की तड़प शेष रह जानी है।"[21]

ग़ज़लकार मनुष्य के मन की कुण्ठा, निराशा, अवसाद, अकेलापन आदि से उभारने के लिए उसे हमेशा उम्मीद की डोरी से बाँधे रखना चाहता है वही इन्सान जीवन की परेशानियों से तंग आकर इस संसार से पलायन न कर जाए। वह इस बात का अहसास करवाता है कि दुख के बादलों के छटने के बाद सुख की बारिश होगी क्योंकि परिस्थितियाँ हमेशा परिवर्तनशील होती है, उन्हें बदलने में देर नहीं लगती। हमेशा सुनहरे सपनों को अपनी आँखों में बसाए रखो, वे कभी न कभी तो पूरे होंगे ही-"खो गये जिसमें उम्मीदों के बहुत सारे शहर/नाउम्मीदों का घना जंगल मेरी आँखों में है/आज के हालात की किस तरह परवाह करूँ/आने वाला खूबसूरत कल मेरी आँखों में है।"[22]

इंसान उम्मीद का दामन न छोड़ो। चाहे वह जीवन में सफल हो या असफल। चाहे असफल होने पर ही सही, इंसान को समस्या या लक्ष्य की जटिलता का अनुभव तो है। उम्मीद के सहारे ही दुनिया कायम है। संघर्षों से घबराकर अपने पथ पर डगमगाने से जीवन का सफर पूरा नहीं होगा। मर-मर कर जीने की बजाय, पल-पल जीवन का आनन्द लेते हुए जीना चाहिए। क्योंकि-"मंज़िलों को भूल जा बस रह गुज़र की बात कर/पाँव जख्मी हैं तो क्या मुझसे सफर की बात कर/टुकड़े-टुकड़े शख्सियत जीना कोई अच्छा नहीं/लम्हा लम्हा ज़िन्दगी में उम्रभर की बात कर।"[23]

वक्त बदलाव का सबसे बड़ा साक्षी है तथा उम्मीद व सपने उस बदलाव की ताकत हैं। बशर्ते किसी में पहल करने की हिम्मत तो होनी चाहिए। माधव जी कहते हैं कि समाज में लोगों को प्रत्येक सही और गलत बात का पता है लेकिन सही की सराहना व गलत का विरोध करना किसी के वश की बात नहीं। यदि इंसान बदलाव की कोशिश करे तो वक्त आने पर नतीजे उसी के हक में होगे उसी भाव सत्य का उद्घाटन करते हुए ग़ज़लकार ने कहा है- "हवा का रुख बदलने की कोई तबदीर भी होगी/सियासी मामलों में ज़िन्दगी गम्भीर भी होगी/अभी तो आसमां ने चुप रहकर सराहा है/हमारे पक्ष में कल वक्त की तहरीर होगी।"[24]

कहने को तो समाज में अनेक विद्वान लोग अपने महान विचारों से समाज के प्रबुद्ध पाठक के मन को संचित कर रहे हैं लेकिन वास्तविकता को आवरण से बाहर लाने का कष्ट कोई नहीं करना चाहता। यह एक सच्चे साहित्यकार की तड़प व संघर्ष है जो जीवन भर दूसरों के कटाक्ष व विरोधों को झेलता है फिर भी मृत्यु पर्यन्त अपने कर्त्तव्य को निभाता है-"कितने दिन रोशन करेंगे मन को बाहर के चिराग़/वक्त ने ही कर दी ये जब गुल मेरे घर के चिराग/मौत के आगोश में जाने से पहले उम्र भर/आँधियों से जुझते है सिर्फ शायर के चिराग।"[25]

ग़ज़लकार माधव जी सच्चे साहित्यकार की समस्याओं को भली-भाँति अवगत है। उनको पता है कि समाज की तस्वीर बदलने के लिए एक ऐसे साहित्य की रचना करनी पड़ेगी जो पक्ष-विपक्ष की लाग-लपेट के बिना यथार्थ को सामने लाये। चाहे उसके लिए जान का जोखिम ही क्यों न उठाना पड़े। माधव जी कहते हैं कि सच कहने कि हिम्मत मैंने की है। इस दुनिया में बहुत से ऐसे लोग हैं जो अपने आपको सच्चे साहित्यकार तो मानते है लेकिन अपने दायित्व को निभाने से डरते हैं। यथा-"तब कहीं जाकर मुकम्मल होगी दास्तान/खून से लिखने पड़गे चन्द अक्षर और भी/सच को सच कहने की बस मैंने उठाई है कसम/वरना तो इस शहर में रहते हैं शायर और भी।"[26]

इस प्रकार माधव जी ने अपने ग़ज़ल-संग्रह में सभी विषयों को समाहित करते हुए अन्त में प्रकृति के प्रति भी अपनी वेदना व्यक्त की। पेड़ों की अँधाधुंध कटाई से जख्मी ग़ज़लकार की हृदय भी उन दिनों को याद करता है, जब चारों तरफ वृक्षों की हरियाली फैली रहती थी। अब पेड़ों की छोड़ों लोगों का मन हरि घास को भी तरस रहा है क्योंकि पेड़ प्राकृतिक दोहन का शिकार हो गए तथा धरती भी वृक्षों की बजाय गगनचुंबी इमारतों से अट गई है। यही माधव जी की चिन्ता का विषय है कि जब जिसके मन में आता है तब वृक्षों को काटने लगते हैं। उन्हें उनके जख्मों का जरा भी अहसास नहीं है-"जिसके जब जी में आता है लगता वही गिराने पेड़/तुम्हें बताओं आखिर किसको जाये जख़्म दिखाने पेड़/इक अरसे से मन का आँगन, हरिघास को तरस गया/सिर्फ वही पिछली यादों को जर्जर जर्द पुराने पेड़।"

निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि माधव ने अपने ग़ज़ल संग्रह में कोई ऐसा भाव अछूता नहीं छोड़ा जो उनके मन में उठा न हो और उसे कलमबद्ध न किया हो। अपने अनुभव

के आधार पर उन्होंने राजनीति में फैली स्वार्थपरता, अवसरवादिता व गुंडागर्दी का यथार्थांकन किया है कि किस प्रकार नेता लोग भोली-भाली जनता के सामने अवसर के अनुरूप मुखौटा बदल-बदल कर आते हैं तथा उनका फायदा उठाते हैं। साधारण जनता उनकी सियासी चालें नहीं समझ पाती है। सामाजिक पहलू का वर्णन करते हुए भी माधव जी हर उस मार्मिक पक्ष का उद्घाटन करते हैं जो समाज के हृदय को दग्ध किए हुए है। रीति- रिवाज़ के नाम पर नारी उत्पीड़न की समस्याओं का चित्रण किया है जो कन्या भ्रूण हत्या से लेकर जीवनपर्यन्त चलती रहती है। समाज में फैली अव्यवस्था तथा असमानता पर भी अपनी चिंता व्यक्त की है और कहा है कि जब रक्षक ही भक्षक बन जाए तो कोई कैसे चैन की साँस ले सकता है। यही चिन्ता इन्सान को अपने तथा अपनों के बारे में सोचने पर मजबूर कर देती है तथा इसका परिणाम यह होता है कि इंसान आशा-निराशा, कुण्ठा, अवसाद, संत्रास आदि मानसिक रोगों से ग्रस्त हो जाता है। समकालीन पीढ़ी की इस मानसिकता का चित्रण उन्होंने बड़ी सूक्ष्मता से किया है। इसके साथ-साथ इन्होंने धर्म के परिवर्तित रूप के दर्शन भी भली-भांति करवाये हैं तथा उसके साथ परिवर्तित भावनाओं तथा परिस्थितियों का अंकन करना नहीं भूले। अंततः हम कह सकते हैं कि इन्होंने अपने ग़ज़ल-संग्रह में यथार्थ परिवेश का सजीव चित्रण किया है, जो सफलतापूर्वक सभी पक्षों के सत्य को उद्घाटित करता हुआ उनके मन में उठी हलचलों को हमारे सामने प्रस्तुत करता है।

सन्दर्भ-

1. माधव कौशिक, सपने खुली निगाहों के, पृ. 32
2. वही, पृ. 15
3. वही, पृ. 29
4. वही, पृ. 37
5. वही, पृ. 45
6. वही, पृ. 51
7. वही
8. वही, पृ. 18
9. वही, पृ. 22
10. वही, पृ. 42
11. वही, पृ. 77
12. वही, पृ. 75
13. वही, पृ. 60
14. वही, पृ. 53
15. वही, पृ. 86
16. वही, पृ. 61
17. वही, पृ. 71
18. वही, पृ. 24
19. वही, पृ. 59
20. वही, पृ. 19
21. वही, पृ. 33
22. वही, पृ. 83
23. वही, पृ. 69
24. वही, पृ. 28
25. वही, पृ. 30
26. वही, पृ. 84

हिन्दी विभाग, राजकीय वरिष्ठ माध्यमिक विद्यालय, मकड़ाना, भिवानी

पृ. 36 का शेष भाग....

के वृत्त से बाहर निकलकर सत्यवती का यह महानानुभव कार्य बँगाली या भारतीय स्त्री के लिए उसकी लगाव का ही नतीजा न होकर विश्व के स्त्री समाज के प्रति लगन का ही उदाहरण है। इसलिए 'प्रथम प्रतिश्रुति' उपन्यास में सत्यवती स्त्रीबोध का वार्त्तावाहक चरित्र है जो अँधेरी रात से निकलकर एक नई सुबह के इन्तज़ार में लीन रहती है।

संदर्भ-

1. त्यागपत्र, जैनेन्द्र कुमार, पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 55
2. वही, पृ. 58
3. वही, पृ. 63
4. प्रथम प्रतिश्रुति, आशापूर्णा देवी, मित्र अघोष पब्लिशर्स, कोलकाता-73, पृ. 25
5. वही, पृ. 3

सरकारी अध्यापिका, हिन्दी विभागाध्यक्ष, कोकराझार सरकारी महाविद्यालय, असम

सहकारी अध्यापक, बँगला विभाग, कमार्स कॉलेज कोकराझार, असम

असगर वजाहत कृत 'मैं हिन्दू हूँ' कहानी–संग्रह में सामाजिक चेतना

डॉ. सुशीला

मानव समाज की ज्ञानात्मक मनोवृत्ति का नाम सामाजिक चेतना है। मानव सामाजिक प्राणी होने के कारण समाज में ही जीवन यापन करता हुआ ज्ञात कर लेता है कि स्वस्थ समाज में ही स्वस्थ जीवन व्यतीत किया जा सकता है। जब सामाजिक कुरीतियाँ, रूढ़ियाँ एवं विसंगतियाँ मानव के अधिकारों पर आघात पहुँचाती है तो उसके विकास में रूकावट का अनुभव होता है। यदि मानव उन विसंगतियों, बाधाओं एवं कुरीतियों के प्रति जागरूक होता है, तो वह जागृत भाव ही सामाजिक चेतना कहलाता है। डॉ. हुकुमचन्द राजपाल ने सामाजिक चेतना को जीवन के रूप में स्वीकार किया है।[1] सामाजिक चेतना से अभिप्राय समाज के स्वरूप और महत्त्व की समझ तथा उसके दायित्वों के बोध से है। समाज के बारे में जब तक चिन्तन-मनन करते हैं, तभी समाजिक चेतना का भाव जागृत होता है। अपने किसी भी कार्य का समाज पर क्या प्रभाव पड़ता है, जब व्यक्ति यह सोचने लगता है तभी उसमें सामाजिक चेतना उत्पन्न होने लगती है। समाज का एक वर्ग ऐसा उत्पन्न होने लगता है। समाज का एक वर्ग ऐसा भी होता है जो अपने निहित स्वार्थों के वशीभूत होकर समाज के बारे में बिल्कुल नहीं सोचता। इस तरह समाज का विकास अवरूद्ध हो जाता है। सामाजिक चेतना सामाजिक वातावरण में विकसित होती है।

सामाजिक चेतना यानि 'सोशल कांशनेस', जिसे केवल शाब्दिक अर्थों में न बाँध कर मानव जीवन के साथ देखना व परखना आवश्यक है। सामाजिक चेतना किसी भी सामाजिक संरचना का आवश्यक अंग है। ऐतिहासिक दृष्टि से मानव किन-किन सामाजिक संरचनाओं को जन्म देता रहा तथा उनसे किस प्रकार प्रभावित होता रहा, इसका अध्ययन सामाजिक चेतना का अभिन्न अंग है। सामाजिक चेतना का दूसरा पक्ष समाज का ज्ञान प्राप्त करने के पश्चात् उसके विषय में लिखा गया साहित्य है, जिसे बौद्धिक उत्पादन भी कहा जा सकता है। इस प्रकार सामाजिक चेतना वर्तमान, भूतकालीन और भविष्य के समाज की चेतना के साथ जुड़ी है। अतीत की संभावना तीनों के प्रति मानव की चिंतन मनन और उससे उत्पन्न वैचारिक तत्त्व ही सामाजिक चेतना को गति देते हैं।

सामाजिक चेतना मनुष्य को पशुत्व से ऊपर उठाकर दिव्यत्व की प्राप्ति कराती है। समाज पशुओं से भिन्न लोगों के समूह या संघ का नाम है। इस प्रकार सामाजिक चेतना को समाज कहा गया है। व्यक्तियों के समूह को समाज कहते हैं, पर जनता के आकस्मिक जमावड़े को समाज नहीं कहा जाता। चेतना सामाजिक वातावरण में सम्पूर्णता से विकसित होती है। वातावरण के प्रभाव से व्यक्ति नैतिकता और उच्च व्यवहारिकता प्राप्त करता है। चेतना और मनुष्य के सामाजिक चरित्र में मौलिक सम्बन्ध है क्योंकि मनुष्य केवल चेतना से उत्पन्न प्रेरणा के कारण ही कोई कार्य करता है। किसी व्यक्ति की चेतना उसकी व्यक्तिगत सम्पत्ति न होकर सामाजिक उपक्रम का परिणाम है। डॉ. नामवर सिंह ने भी जीवन की पीड़ा की अनुभूति को चेतना माना है।[2] चिंतन इन्सान का चारित्रिक गुण है, जो उसे सामाजिक मनुष्य बनाता है। यह उसकी आत्मा को 'सर्व' में रूपान्तरित करता है। सामाजिक मनुष्य का इतिहास और संस्कृति, समाज और मनुष्य के बारे में किया गया चिन्तन उसकी सामाजिक चेतना की आधारशिला है। डॉ. रत्नाकर पाण्डेय ने सामाजिक चेतना के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए लिखा है- ''सामाजिक चेतना अभावात्मक या नकारात्मक नहीं होती। यह व्यक्ति-मात्र में विद्यमान रहती है परन्तु रूढ़ि, अशिक्षा और अभावों के कारण दुष्प्रभावित और कुंठित हो जाती है। इस दुष्प्रभाव से मुक्त रहना और कुण्ठा को अपनी अन्तर्वृत्ति से तिरोहित बनाए रखना ही सामाजिक चेतना है।''[3]

सामाजिक चेतना द्वन्द्वात्मक होती है। इसका अविर्भाव आदर्श समाज और यथार्थ समाज की टकराहट से होता है। समाज का बुद्धिजीवी या जागरूक व्यक्ति जब अपने समाज के बारे में चिंतन करता है तो उसमें अपने समाज के स्वरूप और महत्त्व की समझ तथा उसके प्रति उत्तरदायित्व की भावना उत्पन्न होती है। वह अपने समाज की अन्य समाजों से तुलना करता है। जिससे उसे अपने समाज की कुछ कमियाँ दिखाई देती हैं, वह इन्हें अपनी ज्ञानात्मक मनोवृत्ति के द्वारा दूर करने

का प्रयास करता है, तभी उसमें सामाजिक चेतना का अविर्भाव होता है। इस संबंध में अर्चना जैन का कथन है, ''आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक-सांस्कृतिक, राष्ट्रीय शक्तियों तथा समाज में प्रचलित परम्परागत मूल्यों के परस्पर संघात से जो नयी स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं, उनकी समझ और विश्लेषणात्मक शक्ति 'सामाजिक चेतना' है।''[4]

मार्क्स-ऐंग्लिस के अनुसार- ''आर्थिक व्यवस्था ही वह मूलभूत आधार है, जिस पर राजनीतिक तथा सांस्कृतिक संरचना निर्भर करती है तथा उसी के अनुरूप सामाजिक चेतना में विविध रूप निर्मित होते हैं अर्थात् मनुष्यों की चेतना उसके अस्तित्व का निर्धारण नहीं करती। इसके विपरीत उनका सामाजिक अस्तित्व उसकी चेतना को निर्धारित करता है।''[5] वस्तु जगत के साथ साहित्यकार का संबंध तटस्थता का नहीं होता। वह अपनी रचना में दृश्य संसार में व्याप्त अनुभव जगत को आत्मसात करता है। यह चित्रण सामाजिक चेतना से जुड़ा होता है। लौकिक जीवन में चेतना की व्यापकता सामाजिक तादात्म्य में ही व्यक्त होती है। सामाजिक चेतना किसी देश एवं काल विशेष से संबंधित मानव-समाज में अभिव्यक्त परिवर्तनशील जागृति है। यह केवल समझ ही नहीं देती बल्कि सामाजिक उद्देश्यों को पूर्ण करने के लिए आगे बढ़ने की प्रेरणा भी देती है और सामाजिक आयामों के साथ-साथ विकसित भी होती है। हमारे कुण्ठाग्रस्त जीवन में आशा व विश्वास जागृत कर उन्हें एक सूत्र में पिरोना सामाजिक चेतना का कार्य है।

अतः सामाजिक चेतना समाज की सामाजिक, राजनीति, आर्थिक तथा धार्मिक परिस्थितियों का ज्ञान कराती है। इन परिस्थितियों के परस्पर संघर्ष से हमें जो नवीन ज्ञान प्राप्त होता है, उसको समझने की विश्लेषणात्मक शक्ति का नाम ही सामाजिक चेतना है। यह चेतना ही हमें समाज की उन मान्यताओं, परम्पराओं तथा रूढ़ियों के विरूद्ध लड़ना सिखाती हैं, जोकि हमारे समाज को भीतर ही भीतर घुन की तरह खोखला करती जा रही है। यही वह चेतना है जिसके द्वारा हर समाज विकास की ओर अग्रसर होता है। साहित्य के माध्यम से समाज में चेतना लाने का प्रयास करने वाले लेखकों में असगर वजाहत का नाम उल्लेखनीय है। असगर वजाहत हिन्दी साहित्य के जनवादी लेखक हैं। इनके साहित्य में आम लोगों की तड़प साफ दिखाई देती है। इन्होंने विवश आम आदमी की त्रासद स्थितिओं और मुक्ति के लिए सतत् संघर्ष को अपने साहित्य के माध्यम से प्रस्तुत किया है। इन्होंने अपने कहानी-संग्रह ''मैं हिन्दू हूँ'' में वर्तमान युग में समाज में व्याप्त अनेक समस्याओं का वर्णन किया है। उन्होंने अपने कहानी-संग्रह में विभिन्न समस्याओं के निराकरण हेतु सुझाव देकर समाज में चेतना लाने का प्रयास किया है। उनके कहानी-संग्रह में सामाजिक चेतना के विविध रूप दिखाई देते हैं जिनका वर्णन इस प्रकार है-

1. दहेज प्रथा

विवाह के समय वधू पक्ष द्वारा वर पक्ष वालों को दिए गए धन को दहेज कहा जाता है। नारियों की दयनीय स्थिति के लिए दहेज प्रथा की अहम् भूमिका है। वधू पक्ष सामाजिक रीति-रिवाजों के बहाने दहेज की मांग करते हैं। ग्रामीण व अशिक्षित लोग ही नहीं बल्कि उच्च शिक्षा प्राप्त लोग डॉक्टर, वकील, प्राध्यापक आदि भी बड़ी से बड़ी रकम ऐंठ लेने की फिराक में रहते हैं। दहेज-प्रथा कोढ़ की तरह आज भी हमारे समाज में नीचे से ऊपर तक फैली हुई है। दहेज के कारण होने वाली स्त्रियों की दुर्दशा का वर्णन असगर वजाहत ने 'लड़कियाँ' कहानी में किया है। कहानी की पात्र श्यामा कहती है कि ''अभी तीन साल पहले ही मेरी शादी हुई थी। मेरे पिता ने पूरा दहेज दिया था। लेकिन लालची ससुराल वालों ने दहेज के लालच और अपने लड़के की दूसरी शादी के लालच में मुझे जलाकर मार डाला।''[6] दहेज प्रथा के कारण समाज के लोग लड़की के पैदा होने पर ही उसके दहेज के बारे में चिन्तित होने लगते हैं। 'लड़कियाँ' कहानी में श्यामा की मौत पर अफसोस प्रकट करने आए लोग आपस में बातें करते हुए कहते हैं ''अरे यार इसके पापा को चाहिए था कि मारूति दे ही देता।'', ''कहाँ से लाता - उसके पास तो स्कूटर भी नहीं है।'', ''तो फिर लड़की पैदा क्यों की''?, ''इससे अच्छा था, एक मारूति पैदा कर देता।''[7]

असगर वजाहत चाहते हैं कि स्वयं स्त्रियाँ इस अन्याय का विरोध करें। इसी संदर्भ में 'लड़कियाँ' नामक कहानी की पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं ''श्यामा की जली लाश मानव अधिकार समिति वालों के पास पहुँची। .... सदस्यों ने कहा बोलो, श्यामा .... बोलो .... जब तक तुम नहीं बोलोगी, हमारी आवाज कोई नहीं सुनेगा।''[8] असगर वजाहत स्त्रियों को इस अन्याय के विरूद्ध आवाज़ उठाने के लिए प्रेरित करते हैं ताकि समाज को इस बुराई से बचाया जा सके।

2. स्त्री-उत्पीड़न

वर्तमान युग में नारी शिक्षित होने के बावजूद उत्पीड़न की शिकार है। नारी सुरक्षा को लेकर बने कानून भी उनका भला नहीं कर पा रहे हैं। 'लड़कियाँ' कहानी में जब श्यामा की लाश थाने लाई जाती हैं तो वहाँ पहले से ही दो युवतियों

की जली हुई लाशें रखी थी। इस अवसर पर पुलिस वाले कहते हैं कि ''यार ये लोग एक दिन में एक ही लड़की को जला कर मारा करें। एक दिन में तीन-तीन लड़कियों की जली लाशें आती हैं। कानूनी कार्यवाही भी ठीक से नहीं हो पाती।''[9] असगर वजाहत स्त्री-पुरुष दोनों के लिए समान अधिकारों के पक्षधर हैं। असगर वजाहत चाहते हैं कि स्त्रियाँ रूढ़िवादी विचारों को त्यागकर अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करे। 'तेरह सौ साल का बेबी कैमिल'' कहानी में हक्कानी अपनी पत्नी का शोषण करता है। जिसका पता उसके पड़ोस की औरतों को तब चला जब उन्होंने हक्कानी की पत्नी के रोने की आवाज़ सुनी। लेखक लिखता है कि ''हक्कानी जब कॉलेज जाते हैं तो अपनी युवा पत्नी को किचन में बंद कर जाते हैं। बाहरी दरवाजे पर ताला लगाते हैं और गेट पर ताला लगाते हैं।''[10] इस प्रकार यहाँ हक्कानी द्वारा स्त्री का पत्नी के रूप में शोषण किया जाता है। असगर वजाहत अपनी कहानियों के माध्यम से स्त्री-उत्पीड़न की स्थिति व इसके प्रभाव से समाज को अवगत करवा रहे हैं ताकि वे समय रहते सम्भल जाएं अन्यथा भविष्य में समाज को इसके भयंकर परिणामों को भुगतना पड़ेगा।

3. धार्मिक भेदभाव

आज का युवा वर्ग उदारवाद व शिक्षा के कारण धर्म के प्रभाव अलग होता जा रहा है। वह समाज में प्रचलित मान्यताओं को ऐसे ही ग्रहण नहीं करता बल्कि उनके पीछे तर्क ढूंढ़ने की कोशिश करता है। असगर वजाहत एक जागरूक लेखक होने के नाते अपने साहित्य के माध्यम से उन बातों का विरोध करता है जो समाज और राष्ट्र के विकास में बाधक होती हैं। 'गुरु-चेला संवाद' के माध्यम से यह तथ्य उभरकर सामने आता है। ''चेला : गुरुजी, क्या हमारे देश के मुसलमान विदेशी हैं? गुरु : हाँ, शिष्य वे विदेशी हैं। .... चेला : तब वे विदेशी कैसे हुए गुरु जी''। ''गुरु - इसलिए हुए कि उनका धर्म विदेशी हैं।''[11] यहाँ असगर वज़ाहत जी गुरु-चेला संवाद के माध्यम से उन लोगों को समझाने की कोशिश कर रहे हैं, जो हमारे देश व समाज को धर्म के नाम पर बाँटते हैं और एक-दूसरे के मन में धर्म के आधार पर नफरत पैदा करते हैं। ऐसा होने पर लोग एक ही क्षेत्र में रहते हुए ऐसे रहना शुरू कर देते हैं, जैसे कि कोई दो दुश्मन देश रहते हैं। ''अबे ये हमारी दुकान 'उनके' इलाके में पड़ जाती हैं ... हमारे तो यही ग्राहक थे ... अब नहीं आते ....।''[12] असगर वजाहत समाज में धर्म की दीवार खड़ी करने के पक्ष-धर नहीं है। उनके मतानुसार इन खोखले धार्मिक रीति-रिवाजों से नुकसान ही है, इससे किसी का भला संभव नहीं है।

4. आपसी सम्बन्धों का अभाव

वर्तमान युग में सामाजिक सम्बन्धों में परिवर्तन देखने को मिलता है। असगर वजाहत ने अपनी कहानियों में सामाजिक सम्बन्धों के मूल्यों के प्रमाण को सूक्ष्म रूप से प्रतिबिम्बित किया है। श्री टी. पी. देव की कहानियाँ शीर्षक के अन्तर्गत वजाहत जी ने स्पष्ट किया है कि मानव सामाजिक न होकर एकाकीपन का शिकार हो रहा है। इसके लिए जिम्मेदार कोई और नहीं बल्कि मनुष्य स्वयं है। प्रस्तुत कहानी में दिखाया गया है कि किस प्रकार एक पड़ोसी दूसरे पड़ोसी का नाम तक नहीं जानता, जोकि मनुष्य के सामाजिक संबंधों के अभाव को प्रदर्शित करता है। ''मगर उन्हें यह मालूम नहीं था कि उनके पड़ोसी के पास कौन-सी कार है। उन्हें तो यह तक पता न था कि उनका पड़ोसी कौन है और कहाँ रहता है, लेकिन उन्हें यह मालूम था कि ईर्ष्या क्या होती है।''[13] यदि व्यक्ति समाज में रहता हुआ सामाजिक नहीं है अर्थात् समाज के साथ उसके सम्बन्ध नहीं है तो ऐसा व्यक्ति प्रेम, सद्भाव नहीं अपितु केवल ईर्ष्या और द्वेष को ही समझ सकता है। ऐसा व्यक्ति मशीन की भाँति बन जाता है। उसमें मानवीय संवेदनाएँ समाप्त हो जाती हैं। जब टी.पी. देव के साहब उनसे आराम करने को कहते हैं तो टी.पी. बड़े आश्चर्य से कहते हैं कि यह किस फाईल की बात की जा रही है।

''साहब ने कहा - श्री टी.पी. देव, आप रिटायर हो गए हैं। अब आप आराम कीजिए।'' श्री टी. पी. देव बोले, सर, आराम? ये आप किस फाईल की बात कर रहे हैं?, वे आश्चर्य से साहब की तरफ देखने लगे। साहब समझ गए कि टी.पी. देव आराम का मतलब नहीं समझे। उन्हें समझाने के लिए साहब ने अपना सिर मेज पर रख दिया और आँखें बन्द कर ली।''[14] आज मनुष्य धन प्राप्ति के चक्कर में मशीन की भाँति कार्य करता है। वह सभी सम्बन्ध को नकारते हुए केवल धन प्राप्ति व भौतिक साधनों को जोड़ने में लगा रहता है। मनुष्य, मनुष्य न रहकर, पशुवत हो गया है। उसकी आत्मा मर चुकी है। असगर वजाहत मनुष्य को समाज में रहकर सामाजिक बनने की सलाह देते हैं, तभी समाज में शान्ति व सुधार होगा।

5. शिक्षा का गिरता स्तर

असगर वजाहत सभी को समान शिक्षा के पक्षधर हैं। क्योंकि शिक्षा के अभाव में मनुष्य अपने अधिकारों का प्रयोग करने में समर्थ नहीं हो सकता। लेकिन वजाहत जी को चिन्ता

इस बात की है कि शिक्षा का स्तर नीचे गिरता जा रहा है। वर्तमान समय में शिक्षा केवल डिग्री प्राप्त करने के लिए ली जाती है ताकि उसके आधार पर कोई रोजगार मिल सके और समाज में मान-मर्यादा बढ़ सके। वजाहत जी ऐसी शिक्षा के प्रबल विरोधी है जो केवल डिग्री पाने के लिए हैं। इस सन्दर्भ में 'तख्ती' कहानी में बग्गड़ माट साब का कथन उद्धरणीय है- ''मैंने डिवीजन के लिए एम.ए. थोड़ी ही किया है। मेरा ध्येय है कि जब मैं प्रिंसीपल बनूँ तब तख्ती पर मेरे नाम के साथ जो डिग्रियाँ हों, उनमें बी.ए., बी.टी., एम.ए. होना चाहिए।''[15] बग्गड़ साब के कथन से स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने डिग्री केवल अपनी तख्ती की शोभा बढ़ाने के लिए प्राप्त की है, न कि किसी ज्ञान वृद्धि के लिए। अगर अध्यापक की सोच ऐसी है तो उसके छात्रों की सोच कैसी होगी, यह चिन्ता का विषय है। असगर वजाहत शिक्षा के गिरते स्तर से चिन्तित हैं और शिक्षा के स्तर में सुधार चाहते हैं।

6. राजनीतिक नेताओं का बढ़ता स्वार्थ

वर्तमान युग में राजनीति नेताओं का स्वार्थ बढ़ता जा रहा है। 'नया गणित' कहानी में राजनीति नेताओं के इसी स्वार्थ को चित्रित किया गया है। नेता सत्ता में आते ही स्वार्थपूर्ण कार्य करना शुरू कर देते हैं। इसके लिए वे प्रशासन में भारी फेरबदल करते हैं। ''दूसरी जाति-बिरादरी के अधिकारी धक्के मारकर बाहर कर दिए गए और मंत्री महोदय ने अपने लोगों को बुलवा लिया। जिलाधिकारी भी चलता किए गए और एस. पी. भी बदल गए। यह काम इतनी तेजी से हुआ कि पूरा जिले में कभी इतनी तेजी से कुछ न हुआ था।''[16] राजनेता अपना उल्लू सीधा करने के लिए समाज में लोगों को धर्म, जाति आदि के आधार पर आपस में लड़वाने से भी नहीं चूकते। अपनी कुर्सी पर जमें रहने के लिए ये साम्प्रदायिक दंगे तक करवा देते हैं। ''यह काम छोटे-मोटे स्थानीय नेता अपना स्थानीय और क्षुद्र किस्म का स्वार्थ पूरा करने के लिए करते थे। व्यापारिक प्रतिद्वंद्विता, जमीन पर कब्जा करना, चुंगी के चुनाव में हिन्दू या मुस्लिम वोट समेट लेना वगैरा उद्देश्य हुआ करते थे।''[17] राजनेता लोग आम जनता को बेवकूफ बनाते हैं। इनके स्वार्थ के सामने आम आदमी के जीवन का कोई मोल नहीं है इनके लिए। लेखक समाज को इसी सच्चाई से अवगत कराना चाह रहे हैं।

7. साम्प्रदायिक दंगे

साम्प्रदायिकता से तात्पर्य अपने समुदाय को लगाव रखना तथा केवल अपने सम्प्रदाय के व्यक्तियों की ही रक्षा एवं उन्नति से सम्बन्ध रखना तथा अन्य सम्प्रदाय के लोगों की उपेक्षा करना है। संविधान द्वारा भारत को एक धर्म निरपेक्ष राज्य घोषित किया गया है। धार्मिक विभिन्नता के कारण समाज में अनेक प्रकार के तनाव पैदा होते हैं और इन तनावों को बढ़ाने में राजनेता अहं भूमिका निभाते हैं। स्वार्थी मनोवृत्ति के नेता वर्तमान समय में लोगों की धार्मिक भावना का प्रयोग सत्ता तक पहुँचाने वाली सीढ़ी के रूप में करते हैं। इस साम्प्रदायिकता के कारण साम्प्रदायिक दंगे होते हैं जिसमें निरीह बच्चों, औरतों तक को नहीं बख्शा जाता है। दंगों का मतलब है बिना वजह बेकसूर लोगों की हत्या। दंगों का शिकार हमेशा बेकसूर व आम लोगों ही बनते हैं। 'मुश्किल काम' कहानी में दंगाई आपस में बातचीत करते हुए कहते हैं कि ''मीटिंग की जगह आदर्श थी, यानि शराब का ठेका जिसे सिर्फ चन्द साल पहले ही मदिरालय कहा जाने लगा था, वहाँ दोनों गिरोह जमा थे, पीने-पिलाने के दौरान किसी भी विषय पर बातचीत हो सकती है, तो बातचीत ये होने लगी कि पिछले दंगों में किसने कितनी बहादुरी दिखाई, किसने कितना माल लूटा, कितनों के घरों में आग लगाई, कितने लोगों को मारा, कितन बम फोड़े? कितनी औरतों का कत्ल किया, कितने बच्चों की टाँगे चीरी, कितने अजन्में बच्चों का काम तमाम कर दिया, आदि-आदि।''[18] दंगाईयों की बातचीत में अंदाजा लगाया जा सकता है कि इन्होंने कितना उत्पात मचाया होगा। इनके हौसले कितने बुलन्द हैं। इतना ही नहीं दंगों की त्रासदी को 'मुश्किल काम' नाम कहानी में रेखांकित किया है। ''औरतों की हत्या करने से पहले उनके साथ बलात्कार करना पड़ता है, फिर उनके गुप्तांग को फाड़ना-काटना पड़ता है.....तक कहीं जाकर उनकी हत्या की जाती है।''[19] इन दंगों का एक कारण साम्प्रदायिकता है। दंगा करवाने के लिए कुछ स्वार्थी लोग धर्म या सम्प्रदाय के आधार पर लोगों में गलतफहमियाँ पैदा कर देते हैं, जो दंगों का कारण बन जाती है। इस संदर्भ में असगर वजाहत की कहानी 'मैं हिन्दू हूँ' की निम्न पंक्तियाँ उद्धरणीय है - ''शहर में दंगा वैसे ही शुरू हुआ जैसे हुआ करता था - यानी मस्जिद में किसी को एक पोटली मिली थी जिसमें किसी किस्म का गोश्त था और गोश्त को देखे बगैर यह तय कर लिया गया था कि चूँकि वो मस्जिद में फेंका गया गोश्त है इसलिए सूअर के गोश्त के सिवा और किसी जानवर का हो ही नहीं सकता। इसकी प्रतिक्रिया में मुगल टोले में गाय काट कर दंगे भड़क जाते हैं।''[20] इस प्रकार बिना ठोस वजह से दंगे भड़क जाते हैं और दंगों का परिणाम भुगतना पड़ता है - आम लोगों को। दंगों

के बाद के दृश्य को खबर के माध्यम से दिखाया जाता गया है। ''आप सब ठीक रहे?'' मुझे मालूम था कि तीन साल पहले इस शहर में हिन्दू-मुस्लिम दंगा हुआ था। दंगे की खबरें अखबार में पढ़ी थी। दुकाने लूटी और जलाई गई थी। चार-पाँच लोग मारे भी गए थे।''[21] असगर वजाहत ने अपनी कहानियों में साम्प्रदायिक दंगों के कारणों व परिणामों से अवगत कराया है, ताकि पाठक इसके प्रति सावधान रहे और भयमुक्त तथा तनावरहित समाज का निर्माण किया जा सके।

अतः कह सकते हैं कि असगर वजाहत जनवादी लेखक हैं। उनका लेखन बहुआयामी है। इन्होंने समाज के हर कोने पर दृष्टि डाली है। समाज का कोई भी कोना ऐसा नहीं है जिसकी समस्याओं को उन्होंने उजागर न किया हो। इन्होंने अपनी कहानियों में समाज को स्पर्श करने वाली अनेक स्थितियों पर योग्य विचार प्रस्तुत करते हुए उन्हें दूर करने के उपाय भी सुझाए हैं। उन्होंने समाज में नई चेतना, नया उत्साह लाने का प्रयास किया है। असगर वजाहत की कहानियाँ युग-जीवन से जुड़ी होने के कारण कई समस्याओं का चित्रण एवं विश्लेषण करती हैं। इन सभी समस्याओं के निरूपण के प्रयास में सामाजिक चेतना लाने की असगर वजाहत की सामाजिक प्रतिबद्धता को सहज रूप में देखा जा सकता है।

सन्दर्भ-

1. डॉ. हुकुमचन्द राजपाल, साहित्य के सिद्धान्त तथा रूप, पृ. 33
2. डॉ. नामवर सिंह, छायावाद, पृ. 135
3. डॉ. रत्नाकर पाण्डेय, हिन्दी साहित्य-सामाजिक चेतना, पृ. 17
4. उद्धृत, अर्चना जैन : प्रेमचन्द के निबन्ध साहित्य में सामाजिक चेतना, पृ. 17
5. मार्क्स ऐंग्लिस, आन लिटरेचर एण्ड आर्ट, पृ. 41
6. असगर वजाहत, मैं हिन्दू हूँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 128
7. वही, पृ. 129
8. वही, पृ. 131
9. वही, पृ. 127
10. वही, पृ. 137
11. वही, पृ. 100
12. वही, पृ. 100
13. वही, पृ. 112
14. वही, पृ. 116
15. वही, पृ. 47-48
16. वही, पृ. 21
17. वही, पृ. 35
18. वही, पृ. 32
19. वही, पृ. 33
20. वही, पृ. 36
21. वही, पृ. 125

प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक-124001

पृ. 38 का शेष भाग.....

लेकिन इस दिशा में आज तक संपन्न हुए सभी प्रयास निकट भविष्य में स्वयं ही मुख्यधारा बन जाने की दिशा में आश्वस्त करते हैं और यह आश्वस्ति, दलित चेतना के संघर्ष जिजीविषा सहित उनकी संकल्पशक्ति से बल प्राप्त करती है।[6]

सन्दर्भ-

1. पंचशील शोध समीक्षा, सम्पादक डॉ. हेतु भारद्वाज, वर्ष 2, अंक 8, पृ. 118
2. नवनिकष, सम्पादक, डॉ. लक्ष्मीकांत पाण्डेय, वर्ष 2, अंक 10, पृ. 17
3. मुख्यधारा और दलित साहित्य, ओम प्रकाश वाल्मीकि, प्र.सं., पृ. 178
4. दलित विमर्श के विविध आयाम, डॉ. वीरेन्द्र सिंह यादव, पृ. 174
5. दलित विमर्श, नरसिंह दास वनकर, पृ. 75
6. साहित्य में दलित विमर्श, स्वतंत्र आवाज.कॉम पर उषा त्यागी का आलेख।

शोध छात्र, हिन्दी विभाग, जवाहर लाल नेहरू स्मारक पी.जी. कॉलेज, महराजगंज, उ.प्र.

जैनेन्द्र के उपन्यासों में अभियक्त स्त्री बोध
(सन्दर्भ– त्यागपत्र और 'प्रथम प्रतिश्रुति)

कस्तूरी चक्रवर्ती
डॉ. देबाशीष भट्टाचार्य

'त्यागपत्र' में मृणाल उपन्यास की नायिका है। उसका चरित्र-चित्रण ही उपन्यास की कथावस्तु की आत्मा है। बचपन में ही उसके माता-पिता का देहान्त हो गया था उसके फलस्वरूप उसका पालन-पोषण भईयाँ-भाभी की देख-रेख में हुआ। मृणाल अपने बड़े भाई से बहुत छोटी थी और घर में उसका भतीजा प्रमोद उससे तीन-चार साल छोटा था। अतः दोनों में बहुत बनती थी। मृणाल के भईयाँ उससे बहुत स्नेह करते थे और उसकी भाभी को सदैव यही चिन्ता रहती थी कहीं भईयाँ का प्यार बहन को बिगाड़ न दे इसलिए मृणाल के प्रति वह कठोर रहती थी।

बचपन में ही वह अत्यन्त रूपवती थी। उसके बड़े भाई और भतीजे दोनों ही उसके रूप को देखकर मुग्ध हो जाते थे। वह अत्यन्त शरारती भी थी। स्कूल में हमेशा कोई न कोई शरारत करती रहती थी और घर आकर अपने भतीजे को सारी शरारतें सुनाती थी। स्कूल में उसकी एक सहेली भी थी जो हमेशा मृणाल की शरारतों में भाग लेती थी। एक बार शीला ने गणित के मास्टर की कुर्सी में पीन चुभा दी। पीन चुभने पर मास्टर जी ने सारे क्लास को पीटने की धमकी दी। इस पर मृणाल ने खड़े होकर स्वयं अपराध स्वीकार कर लिया और मास्टर के हाथ से मार खाई। बचपन से ही उसमें आत्मपीड़न या अपने आप को दुखित करने की भावना थी।

मृणाल अपनी किशोरावस्था में ही तरंगित विचार वाली थी। स्कूल में पढ़ते-पढ़ते जब उसकी उम्र किशोरावस्था पर पहुँची तो उसके स्वभाव में ही परिवर्तन हो गया। अवसर मिलने पर वह अकेली छत पर खटोला डालकर उस पर पड़े-पड़े आकाश में उड़ते हुए पतंग को देखा करती और कोयले से धरती पर करीम-कॉटे खींचती रहती। प्रमोद के साथ कभी-कभी बातचीत करते हुए वह चिड़ियाँ बनकर उड़ने की अभिलाषा व्यक्त करती थी।

मृणाल का पति धर्म हमारे रूढ़िगत पति धर्म से भिन्न है। वह अपने पति धर्म का सदैव पालन करती है। शीला के भाई से उसे दूर करने के लिए उसके भईयाँ-भाभी ने एक अधेड़ उम्र के व्यक्ति के साथ उसका विवाह कर दिया फिर भी वह अपनी ओर से हमेशा अपने पति को खुश रखने का प्रयत्न करती है। मृणाल कभी-कभी पीहर भी आती है और अवसर मिलने पर प्रमोद के हाथों शीला के भाई को चिट्टी भेजवाती है। मृणाल ईमानदार होने के कारण अपने पति को शीला के भाई के बारे में बता देती है क्योंकि पति से किसी भी तरह की बातें छुपाना वह पाप समझती है, मगर नतीजा यह होता है कि उसका पति उसे दुष्चरित्र कहकर घर से निकाल देता है। अपने भतीजे प्रमोद को वह स्पष्ट करते हुए कहती है कि ''मैंने अपने पति को नहीं छोड़ा उन्होंने ही मुझे छोड़ा है। मैं स्त्री धर्म को पति धर्म ही मानती हूँ, उसको स्वतंत्र धर्म में नहीं मानती। क्या पतिव्रता को यह चाहिए कि पति उसे नहीं चाहता हो तब भी वह उस पर अपना भार डालें रहे।''[1] इसलिए वह अपने पति की आँखों से ओंझल हो गई।

मृणाल में साहस और धीरज की असीम शक्ति है। इसलिए जीवन में अनेक बार असहाय यातनाओं को सहन करके भी वह जीवन में मुक्ति पा लेने का कभी विचार तक नहीं करती। एक बार पतिगृह से पीहर आने पर वह अत्यन्त दुबली-पतली हो जाती है। उस पर जमाल-घोटा का प्रयोग कर अपने स्वास्थ को और भी ज्यादा बिगाड़ लेती है, परन्तु भईयाँ-भाभी के कहने पर न चाहते हुए भी चुपचाप पति के घर वापस चली जाती है। पति के द्वारा घर से निकाल दिये जाने के बाद वह कोयला-विक्रेता के यहाँ आत्मसमर्पण कर देती है। वह जानती है कि उसके रूप का लोभी यह कोयले वाला उससे उक्ता कर उसे अकेला छोड़कर भाग जायेगा। उस कोयले वाले के साथ रहने के कारण बताते हुए वह प्रमोद से कहती है कि ''उसका प्रेम स्वीकार करने की कल्पना भी असह्य थी। पर उसका दायित्व मुझ पर न था और यह भी ठीक है कि उस समय उसका सर्वस्य मैं ही थी। मैं उसके हाथ से निकलती तो अनर्थ कर बैठता, अपने को मार लेता या शक्ति होती तो मुझे मार डालता। सच कहती हूँ प्रमोद कि उस समय इस आदमी पर मुझे इतनी करूणा आ रही थी वह मैं ही जानती हूँ, मैं उसके भ्रम को नहीं तोड़ सकी कि मैं उसकी हूँ, उस पर मुग्ध हूँ। ऐसा करना क्रूरता होती। मेरे पास

जो कुछ बचा था मैंने उसे सौंप दिया।''[2]

मृणाल आत्मपीड़न और आत्मबलिदान को जीवन का मूल स्त्रोत मानती है। उसके जीवन में आरम्भ से अन्त तक दुख उत्पन्न करने वाली परिस्थितियाँ उपस्थित होती है। किन्तु वह कभी भी किसी के विरूद्ध एक शब्द भी मुँह से नहीं निकालती। भईयाँ-भाभी उसका विवाह एक अधेड़ उम्र के आदमी के साथ कर देते है। इस पर वह चुपचाप पति के साथ चली जाती है। उसका पति उस पर अत्याचार करता है पर वह चुपचाप सहन कर लेती है। पति के द्वारा घर से निकाल दिये जाने पर वह घर फरियाद लेकर आने की बजाय कोयले वाले के साथ रह लेती है। वहाँ से त्यागकता होने पर वह मास्टरनी की नौकरी करने लगती है। वहाँ जब उसकी पूर्व इतिहास ज्ञात हो जाती है तब वह नौकरी से निकाल दी जाती है और अन्त में एक बदनाम मोहल्ले में जीवन बिताकर रोग से ग्रस्त शरीर छोड़ देती है। (यानि उसकी मृत्यु हो जाती है)। इस प्रकार जीवन भर दुख, पीड़ा और अभावों में रहकर भी आत्मबलिदान और आत्मपीड़न के द्वारा चुपचाप सब सह लेती है। आत्मपीड़न की साधना में ही उसकी मृत्यु हो जाती है। अपने भतीजे प्रमोद के साथ चलने के बार-बार आग्रह को वह ठुकरा देती है क्योंकि मृणाल अपने कारण किसी अन्य को दुख नहीं देना चाहती है।

'तप' और 'साधना' उसके जीवन का लक्ष्य बन जाता है। समाज की अव्यवस्था एवं पुरुष की वासनात्मक भूख के कारण जो कुछ भी उस पर आ पड़ता है सहन करती रहती है।

सामाजिक अन्यायों से कुचली गई अपनी जैसी नारियों का संगठन साधने का वह अंत में प्रयास करती है। जब मृणाल बदनाम मोहल्ले में पहुँच जाती है तब उसका भतीजा प्रमोद जो अब एक जॉज बन चुका है उसे लौटाने के लिए उसे ढूढ़ता हुआ वह पहुँच जाता है। प्रमोद के आग्रह पर अब वह घर लौटना नहीं चाहती। वह उसे जितना अधिक रुपया दे सके उतना रुपया देने को कहती है ताकि वह नरक-कुंड रुपयों के जोर पर शायद स्वर्ग बन जाएँगी।

इस प्रकार मृणाल का चरित्र बड़ा अस्पष्ट एवं अस्थिर बन पड़ा है। उसमें कुछ विचार प्राचीन रूढ़िगत है तो कुछ नवीन एवं आधुनिकतम विचार भी है। अपने पास कुछ न होने पर भी अपनी बच्ची को मिशन वालों के पास नहीं देती है तो दूसरी ओर यह जानते हुए भी कोयला वाला थोड़ा समय उसके साथ विश्वासघात करके उसे छोड़ जायेगा फिर भी वह कोयले वाले को अपना लेती है। इस प्रकार अनेक विरोधाभास उसके चरित्र में देखने को मिलता है।

पाठक को उसके दुखों का समस्त कारण सामाजिक अव्यवस्था ही दिखाई पड़ती है जबकि वह स्वयं समाज को तनिक भी दोष नहीं देती। उसका तो कहना है ''समाज को तोड़ना-फोड़ना नहीं चाहती, समाज टूटा कि हम फिर किसके भीतर बनेंगे या फिर किसके भीतर बिगड़ेंगे इसलिए मैं इतना ही कह सकती हूँ कि समाज से अलग होकर उसकी मंगलाकांक्षा में खुद ही टूटती रहूँ।''[3] मृणाल समाज की इस व्यवस्था को अटूट बनाये रखने के लिए स्वयं घूट-घूट कर मरना पसन्द करती है।

सत्यवती 'प्रथम प्रतिश्रुति' उपन्यास की मुख्य किरदार है। बाल्य अवस्था से ही सत्यवती का प्रयास नारी के स्वाधिकारों के लिए लड़ना है। जिस काल में लड़कियों का पढ़ना-लिखना पाप माना जाता था। ठीक उसी काल में सत्यवती ने जबरन इन सारे अधिकारों को अर्जित किया। लड़कियों पर कर रहे अत्याचारों का विरोध किया। 19वीं सदी के समाज में लड़कियों की परिस्थितियों को चिन्हित करते हुए सत्यवती की छवि उभरकर सामने आई। उसके बाद से आज तक यानि वक्त के साथ-साथ चेहरों में एक बदलाव आया। सवालों के घेरे में जकड़ी सत्यवती को यह समाज और अनुशासन के नाम पर पुरुषों की मनमानी बेचैन कर रही थी। पुराने रीति-रिवाजों के मोह जाल से वह बाहर आना चाहती थी। सत्यवती से सुवर्णलता और बकूलकथा के बीच में लड़कियों का सम्मान स्वच्छंदता और स्वावलम्बन में एक नई चेतना का संस्कार हुआ। इन तीनों उपन्यासों के बाहरी जगत् और मनोजगत् को उजागर करती है। सत्यवती के पिता रामकाली चाटूर्जे ब्राह्मण होते हुए भी उनका पेशा पूजा-पाठ तक ही सीमित नहीं था। बल्कि 'नाड़ी टेपा बामून' के नाम से वह परिचित थे। 'नाड़ी टेपा बामून' का अर्थ है लोगों के नसों की जाँज़ करना। रामकली चाटूर्जे युवा अवस्था से अब्राह्मण के घर रहकर वैद्य की शिक्षा ग्रहण किये और गुरु के देहान्त के बाद उनकी यश को पूंजी बनाकर बहुत ख्याति प्राप्त किये। उसके बाद अगाध सम्पत्ति लेकर वह अपने गाँव वापस लौटे। गाँव का संस्कार, परम्परा, रूढ़ि आदि से कोसों दूर उनका जीवन शहर के खुले विचारों में अधिक रमा था। इन्हीं विचारों में बहकर रामकाली अपनी लड़की सत्यवती के सभी प्रश्नों का उत्तर देने में कोई संकोच नहीं करते थे।

सत्यवती रामकाली के इकलौती सन्तान है। सत्यवती के जन्म के बाद रामकाली को दूसरी सन्तान की कोई चाहत न था। वह सत्यवती को अपने संस्कारों के साँचे में डालना चाहते थे। उस समय यह प्रचलन था कि लड़कियों का पढ़ना-लिखना पाप है लेकिन रामकाली को जब इस बात का पता चलता है कि सत्यवती का मन पढ़ाई में अधिक है तो

उन्होंने अपनी बेटी को डाँटने की बजाय जीवन में आगे बढ़ने की ओर प्रोत्साहित किया। सिर्फ पढ़ाई में ही नहीं सत्यवती का झुकाव पेड़ पर चढ़ना, मछली पकड़ना, तैरना, इन सब में वह लड़कों से भी दस कदम आगे थी। सत्यवती की सहेली पुन्नी जब यह कहती है कि 'लड़कियों को ऐसा नहीं करना चाहिए, वैसा नहीं बोलना चाहिए', तब वह गुस्से में पुन्नी से कहती है कि ''कौन कहता है तुझे कि नहीं करना चाहिए? लड़की-लड़की, क्या माँ के पेट में लड़कियों का जन्म नहीं होता? जैसे कि वे बाढ़ के पानी में बहकर आई है। इतना ही लड़की-लड़की की रट करेगी तो मेरे साथ खेलने मत आना।''[4]

'प्रथम प्रतिश्रुति' उपन्यास के शुरूआत में ही लेखिका आशापूर्णा देवी ने कहा है, ''सत्यवती मेरी कहानी नहीं है। यह कहानी बकूल की पुस्तक से लिया गया है। बकूल ने कहा था-इसको कहानी कहना चाहती हो कहानी, सच कहना चाहती हो सच। लेखिका कहती है-बकूल को मैंने बचपन से ही देखा था, अब भी देख रही हूँ। हर समय कहती हूँ-बकूल, तुम्हें लेकर कोई कहानी लिखी जा सकती है। बकूल हँसती है। अविश्वास की हँसी नहीं, बकूल कभी यह नहीं सोचती उसे भी लेकर कहानी लिखी जा सकती है। निजी सम्बन्ध से कोई मूल्यबोध ही बकूल का नहीं है, कोई चेतना नहीं है।''[5]

'प्रथम प्रतिश्रुति' का अर्थ है पहला संकल्प। इस उपन्यास के माध्यम से लेखिका ने स्त्री जाति के समान अधिकार के लिए एक संकल्प का अध्याय शुरू किया। लेखिका का मुख्य उद्देश्य स्त्री जाति के लिए एक नये आयाम की खोज है। इसलिए इस उपन्यास के पहले चरण से आखिरी चरण तक स्त्री बोध एक अन्तर्गत चेतना प्रवाह की तरह सक्रिय है। इस उपन्यास की प्रमुख किरदार स्त्री के अंतर्मन के भाव को प्रकाशित करने में सहायक है। मुख्य चरित्र में करीब 57 किरदार उपन्यास की कहानी को गति प्रदान करता है। इसमें से पुरुष चरित्र है 27 और 29 स्त्री चरित्र के जरिए लेखिका ने अपने संकल्प का पाठ शुरू किया। पुरुष चरित्र में छह व्यक्ति सत्यवती के इस संकल्प को वास्तविक चेहरा देने में सहायता प्रदान करते है। यह छह किरदार है-सत्यवती के पिता रामकाली, सत्यवती के दो लड़के साधन और सरल, सत्यवती के चचेरे भाई नेडू, नवकुमार के शिक्षक भवतोष और नवकुमार के दोस्त निताई। दूसरे पक्ष में स्त्री चरित्र में सिर्फ शंकरी की लड़की सुहास ही एकमात्र ऐसा किरदार है जो सत्यवती के विचार और भावनाओं का कदर करती है। हालांकि सत्यवती की इकलौती लड़की सुवर्ण भी अपनी माँ के इस संकल्प को चेतना का रूप देने की कोशिश करती है। इस उपन्यास में सुवर्ण की मौजूदगी ज्यादा परिसर पर नहीं है। लेकिन उपन्यास के शुरूआत में लेखिका की जुबानी हमें जो ज्ञात होता है इसे जेहन में रखते हुए कहा जा सकता है कि स्त्री की स्वीकार के लिए सत्यवती के संकल्प के उत्तराधिकार सुवर्ण में बखूबी देखा गया है।

सत्यवती के घटना प्रवाह में 29 स्त्री चरित्र रहने के बावजूद सिर्फ सुहास ही एक ऐसी स्त्री थी जिसने सत्यवती का साथ दिया। सत्यवती की यह लड़ाई स्त्रियों के अधिकारों की लड़ाई थी लेकिन सुहास को छोड़कर किसी भी स्त्री ने सत्यवती का साथ नहीं दिया जबकि उपन्यास के पुरुष चरित्र में छह ऐसे पुरुष थे जो सत्यवती के इस लड़ाई में शामिल हुए। उसमें मुख्य भूमिका के रूप में भवतोष मास्टरजी का साथ सत्यवती को हर कदम पर प्रोत्साहित करता रहा।

सत्यवती जब अपने नये संसार बसाने ससुराल से कलकत्ता शहर में रहने जाती है तब भवतोष मास्टर जी का प्रोत्साहन और मार्गदर्शन के जरिए यह असंभव बात संभव हो पाई। अपने पिता रामकाली के अलावा यह व्यक्ति दूसरे ऐसे चरित्र है जिनकी आशीष, प्रोत्साहन और मार्गदर्शन से सत्यवती का कदम ख़्वाब से हकीकत की तरफ मुड़ गई। वास्तव में सत्यवती अपने पिता रामकाली व भवतोष मास्टर जी के प्रति कृतज्ञ है। सत्यवती इनसे अपने हर फैसलों में सलाह-मशवरा करना नहीं भूलती थी। स्त्री जाति के पीड़ा और दुख में सत्यवती हमेशा उसका कारण खोज कर स्त्री को अधिकार और सम्मान देने की कोशिश करती है। यह बात उसकी परिचित और अपरिचित दोनों वर्गों में एक समान थी। इसलिए दहेज उत्पीड़न के कारण निताई की साली की मृत्यु होने के बाद जब यह घटना सत्यवती को ज्ञात हुआ तब वह उस अपरिचित लड़की की करूण गाथा सुनकर दोषी को सजा देने की ठानी। सत्यवती पत्रों के द्वारा अंग्रेज़ी हुकुमत से इस अनचाहे और करूण घटना की न्याय की माँग की। पत्र पाकर अंग्रेज़ी हुकुमत सत्यवती के घर आकर पूछताछ करने लगे तब सत्यवती निडर रहकर अंग्रेज शासक के सभी सवालों का उचित उत्तर देकर उनसे इस मृत लड़की के लिए न्याय माँगी। गौरों के सामने पति, लड़के, यहाँ तक कि भवतोष मास्टर जी भी किसी हद तक भयभीत दिखने लगे। लेकिन सत्यवती नारी के सम्मान, मर्यादा और न्याय के सवालों पर अविचल रहकर इस भारत से स्त्रियों के ऊपर अत्याचार के घटनाओं पर रोक लगाने की अर्जी की।

इस सब घटनाओं से पाठक के सामने सत्यवती का जो चेहरा उभरकर आता है, वह है-किसी स्थिति में जैसे भी हो स्त्री जाति का उद्धार और अधिकार अर्जन। परिचित-अपरिचित

शेष भाग पृ. 28 पर....

दलित विमर्श और हिन्दी साहित्य

राजेश यादव

दलित शब्द का अर्थ है-जिसका दलन और दमन हुआ है। डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन दलित शब्द की व्याख्या करते हुए कहते हैं-''दलित वह है जिसे भारतीय संविधान ने अनुसूचित जाति का दर्जा दिया है।'' कंवल भारती के अनुसार-''दलित वह है जिस पर अस्पृश्यता का नियम लागू किया गया है।'' दलित के अन्तर्गत सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक शोषण का अन्तर्भाव होता है तो सर्वहारा केवल आर्थिक शोषण तक ही सीमित है। प्रत्येक दलित वर्ग सर्वहारा के अन्तर्गत आ सकता है लेकिन प्रत्येक सर्वहारा को दलित कहने के लिए बाध्य नहीं हो सकते। दलित शब्द उस व्यक्ति के लिए प्रयुक्त होता है जो समाज व्यवस्था के तहत सबसे निचली पायदान पर होता है। वर्ण व्यवस्था द्वारा जिसे अछूत की श्रेणी में रखा गया है जिसका दल या शोषण हुआ है। सम्पूर्ण विश्व रंगभेद, जातिभेद, आर्थिक स्थिति भेद के कारण शोषक और शोषित दो वर्गों में विभाजित हो गया है। दलित वर्ग के अन्तर्गत अस्पृश्य, शूद्र, हरिजन, डिप्रेश्ड क्लास के सभी लोग एवं उच्च तथा समृद्ध लोगों द्वारा कुचले, आर्थिक शोषण से शोषित तथा ऐसे लोग जिसका मानवीय जीवन विनष्ट हुआ हो, वे किसी जाति, वर्ग, धर्म, लिंग के हों 'दलित वर्ग' के अन्तर्गत आते हैं।''[1]

दलित विमर्श से अभिप्राय है-जिसमें दलितों ने स्वयं अपनी पीड़ा को स्थापित किया हो। वास्तविक रूप से दलितों द्वारा लिखा गया साहित्य ही दलित साहित्य की कोटि में आता है। ''दलित साहित्य नकार का साहित्य है जो संघर्ष से उपजा है जिसमें समता, स्वतंत्रता और बंधुता का अभाव है और वर्ण व्यवस्था से उपजे जातिवाद का विरोध है।'' दलित साहित्य जन साहित्य है। यह साहित्य मानवीय मूल्यों की भूमिका पर सामंती मानसिकता के विरुद्ध आक्रोशजनित संघर्ष और विद्रोह से उपजा है। इस साहित्य का मुख्य प्रयोजन है-शोषण के बन्धनों से मनुष्य को मुक्त रहना चाहिए। उसका स्वतंत्र अस्तित्व स्वीकार करना चाहिए। चावार्क, बुद्ध, कबीर, रैदास के साथ ही साथ महात्मा फूले राजर्षि साहू, डॉ. अम्बेडकर आदि के विचारों के कारण दलितों में जागृति आई जिससे वे अपने अधिकार के प्रति सचेत हो गये। इस कारण उन्होंने आन्दोलन किये। इन आन्दोलनों से प्रेरित होकर दलित साहित्य का निर्माण हुआ। यह निर्माण कार्य वैश्विक स्तर पर दिखाई देता है एवं लम्बे शोषण के जीवन को झेलने के बाद उससे लगातार उबरने की जिजीविषा ही शायद वह चीज़ है जिसने सदियों से अभिशप्त दलितों को इस मुकाम तक पहुंचाया है कि उनमें अपने शोषण के खिलाफ संगठित विरोध का साहस पैदा किया। विरोध के साहस के साथ ही इस भावना को दलित समाज ने कई रूपों में अभिव्यक्त किया है। दलित साहित्य का सृजन उन रूपों में से एक महत्त्वपूर्ण रूप है। परम्परागत जीवन मूल्यों के समानान्तर व्यापक जीवन मूल्यों की अभिव्यक्ति ही दलित साहित्य का मूल आधार है। वैश्विक स्तर पर व्यापक रूप से निर्मित दलित साहित्य इस दृष्टि से काफी महत्त्वपूर्ण है।[2]

दलित साहित्य ने दुनिया के साहित्य को नयी अभिव्यक्ति दी, नई परिभाषा दी, यहां तक कि नया नायक दिया। विश्व समीक्षा का क्षितिज विस्तारित किया। अपने प्रश्न, अपनी वेदना और समस्या दोनों तक पहुंचाने के लिए उसने लेखन किया है। वैश्वीकरण के इस दौर में आज सरकारी मशीनरी कम हो रही है एवं सरकार समाजसेवी संगठनों के माध्यम से अपनी सेवाएं प्रदान कर रही है, इस कारण भारतीय समाज में समाजसेवी संगठनों की मात्रा बढ़ गयी है। इस परिप्रेक्ष्य में अनेक दलितों ने अपने समाजसेवी संगठन शुरू कर दिये हैं। सन् 1992 में गठित राष्ट्रीय दलित मानव अधिकार अभियान समिति एक ऐसी ही दलित स्वयंसेवी संगठनों की शीर्ष संस्था है जो अनेक दलित संगठनों को आर्थिक, वैचारिक, तकनीकी सहायता पहुंचाती है। आज इस संस्था का नेटवर्क 26 देशों में है। दलित साहित्य का प्रारम्भ मराठी साहित्य में सर्वप्रथम हुआ। प्रारम्भ में कुछ लोगों ने इसका अर्थ यह भी लिया कि जो साहित्य स्वयं दलित वर्ग के लोगों ने लिखा वही दलित साहित्य है। दलित साहित्य के अन्तर्गत क्या आना चाहिए और क्या नहीं, इस विषय में विद्वानों में मतभेद है। प्रेम कुमार मणि के अनुसार-''दलितों

के लिए दलितों द्वारा लिखा जा रहा साहित्य ही दलित साहित्य है।'' इसी प्रकार डॉ. एन. सिंह ने भी दलितों द्वारा लिखे साहित्य को इस वर्ग में माना है-''दलित साहित्य दलित लेखकों द्वारा लिखित वह साहित्य है जो सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और मानसिक रूप से उत्पीड़ित लोगों की बेहतरी के लिए लिखा गया हो।''

हिन्दी में 'दलित विमर्श' का प्रारम्भ कहानी पत्रिका 'सारिका' के दो 'दलित विशेषांकों' से माना जाता है जो क्रमशः अप्रैल एवं मई 1975 में निकाले गये। हंस पत्रिका में भी इसके कर्ता-धर्ता राजेन्द्र यादव दलित विमर्श की चर्चा बराबर करते रहे हैं। हिन्दी के दलित कथाकारों में डॉ. एन. सिंह, ओम प्रकाश वाल्मीकि, राम शिरोमणि, जयप्रकाश कर्दम, माता प्रसाद, अरविन्द राही, मलखान सिंह, मोदनदास, रघुवीर सिंह आदि के नाम लिए जा सकते हैं। रमणिका गुप्ता द्वारा सम्पादित 'दूसरी दुनिया का यथार्थ' में जो 18 कहानियां संकलित की गयी हैं, वे सभी दलित कहानीकारों द्वारा रचित हैं। दलित साहित्य ने स्त्री विमर्श, आदिवासी विमर्श को प्रेरित किया है। विश्व के दलितों को प्रगतिशील-मानववादी विचार देने का कार्य दलित साहित्य कर रहा है। जातिविहीनता की बात इस साहित्य द्वारा करने के कारण विश्व मंच पर इस साहित्य का मंथन हो रहा है। दलित साहित्य ने मानवतावादी विचार प्रकट किये हैं जो आज के वैश्विक मनुष्य के लिए अत्यन्त उपयोगी है। ''दलित साहित्य प्रमाणिक चेतना की प्रतीति है। यह चेतना प्रगतिशीलता का विरोध नहीं करती बल्कि उसका ही एक स्वतंत्र उन्मेष बन जाती है।''[3]

दलित साहित्य सामाजिक अत्याचार, अन्याय और शोषण केन्द्रित भेदभाव वाले वर्णवादी विचारों को ध्वस्त करना चाहता है। दलित लेखक पूर्णतः व्यावहारिक होने के कारण वैश्विक स्तर पर प्रभाव निर्माण कर रहा है। कमलेश्वर ने इस सम्बन्ध में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि ''दलित साहित्य मनुष्य की मुक्ति का वह साहित्य है जो अमानुषों को ऐश्वर्यवादी साहित्य संस्कृति में मानुष की नियति और अस्मिता के सवालों को निर्णायक रूप में तय कर रहा है। समता, बन्धुता और स्वतंत्रता के अर्थों और व्याप्ति को नये आयाम दे रहा है। नये मानसिक भूगोल का निर्माण कर रहा है। दलित साहित्य में यह नयापन है। एक प्रकार की ताज़गी है। साहित्य की यह धारा पारस्परिक ढांचे को तोड़ रही है। यह यथार्थ को एक नये ढंग से परख रही है तथा सौन्दर्य के बारे में हमारी पहले से जो राय बनी हुई थी उसमें एक नयापन ला रही है। आज पूरी दुनिया में दलित साहित्यकार, अभिव्यक्ति, स्वतंत्रता का उपयोग कर जीवन के विविध पक्षों को अभिव्यक्त कर रहे हैं। इस आधार पर कहा जा सकता है कि आने वाले दिनों में दलित साहित्य ही साहित्य की मुख्य धारा बन जायेगी।''[4]

दलितों द्वारा लिखी गयी कहानियां उनके स्वानुभूत अनुभवों पर आधृत होने के कारण उस सामाजिक अन्याय का घिनौना चेहरा यथार्थ में प्रस्तुत करती हैं जो समाज में ग्रामीण स्तर पर अब भी किसी न किसी रूप में विद्यमान है। फणीश्वर नाथ 'रेणु' जी ने अपनी कहानियों में इसे काफी पहले किसी न किसी रूप में अभिव्यक्ति देनी प्रारम्भ कर दी थी। 'उच्चाटन' कहानी में 'विलसिया' (रामविलास) इसी दलित वर्ग का पात्र है जो धन कमाकर गांव में लौटा है तो साथ में शहर की चेतना भी लाया है जहां दलित का तिरस्कार नहीं होता। 'मिसिर' को जली-कटी सुनाकर जैसे उनका जहर दांत उसने उखाड़ दिया था। छुआछूत का जो विष जाति व्यवस्था में गहराई तक व्याप्त है उसके दुष्परिणाम दलितों को भोगने पड़े हैं, इसमें दो राय नहीं है। हिन्दी में प्रकाशित कुछ दलित लेखकों के कहानी संग्रह इस प्रकार हैं-रक्तबीज-सत्यप्रकाश, दृष्टिकोण-अरविन्द राही, सलाम-ओमप्रकाश वाल्मीकि, चार इंच की कलम-कुसुम वियोगी, सुरंग-दयानन्द बटरोही, आवाज़ें-मोहन दास नैमिशराय। दलित चेतना से युक्त कुछ प्रमुख हिन्दी उपन्यासों के नाम इस प्रकार हैं-जस-तस भई सवेर-सत्यप्रकाश, छप्पर-जयप्रकाश कर्दम, जूठन- ओमप्रकाश वाल्मीकि, मुक्तिपर्व-मोहनदास नैमिशराय।

यद्यपि दलित वर्ग की विपत्ति कथा ऐसे लेखकों ने भी लिखी है जो स्वयं दलित नहीं हैं तथापि यह कहना युक्तसंगत होगा कि भोगे हुए स्वानुभूत सत्य की अभिव्यक्ति तो इन्हीं रचनाओं में हो सकती है जो स्वयं दलित वर्ग के लोगों ने लिखी हो। वैसे प्रेमचन्द की 'सद्गति' कहानी में 'दुखी चमार' की जो अधोगति दिखाई है उसे दलित चेतना का उत्स माना जा सकता है। 'दुखी' का जीवनपर्यन्त की सेवा, भक्ति, श्रद्धा का कैसा फल उसे पुरोहित जी ने दिया है-इसे पढ़कर प्रत्येक सहृदय की आंखें डबडबा जाती हैं।''[5]

दलित लेखन, चाहे वह किसी भी विधा के रूप में सामने आया है वह सवर्ण समाज पर जारी श्वेत पत्र-सा लगता है। दलित प्रतिबंधों, अवरोधों, निषेधों और वचनाओं के बीच जीने का सनातन अभ्यस्त रहा है, लेकिन उसका आक्रोश लेखनी से सामने आया और जनमानस उद्वेलित हुआ। यदि कुल मिलाकर दलित विमर्श पर चर्चा करते समय सामाजिक, राजनीतिक एवं साहित्यिक संदर्भ तलाशें जायें, तो सभी का मूल स्वर मुख्यधारा से अलग रहने की छटपटाहट अभिव्यक्त करता है। **शेष भाग पृ. 33 पर.....**

एक अनाम कहानीकार की कहानियों में जीवन की तलाश

प्रो. रमेश शर्मा

जनजीवन में जीवन की परख के साथ जीवन की तलाश में मानव निरन्तर प्रयास-रत रहता है। मानव-जीवन एक सीधी रेखा नहीं है। यह उच्छृंखल जल-प्रवाह की तरह अपने किनारों की काट-छाँट करता हुआ नई राहों की तलाश करता है। कहानी विधा तो स्वयं में जीवन की कहानी होती है। यह बदलते जीवन-संदर्भ में जीवन के यथार्थ से दो-चार होती हुई नये जीवन की राहों की तलाश करती है। रचनाकार जीवन के मर्म के प्रति संवेदनशील नहीं होता तो साहित्यिक रचना, रचना नहीं हो सकती।

विगत् शताब्दी की उत्तरार्द्ध और वर्तमान सदी का प्रारंभ साहित्य में रचनाकारों के उदय का एक समृद्ध काल कहा जा सकता है। इस काल में अनेक नामी, अल्प नामी और अनाम रचनाकारों ने कहानी विधा में अपनी लेखनी और प्रतिभा की छाप छोड़नी चाही है। इसमें भी अनाम कहानीकारों का योगदान साहित्य के इतिहास का विषय नहीं बन पाया जबकि इसकी उपेक्षा साहित्य के विकास की यात्रा को रेखांकित करते समय एक बड़ी भूल होगी। ऐसे ही अनाम कहानीकारों में अपर्णा शर्मा एक ऐसा नाम है जो अपनी कहानियों में बदलते समाज में जीवन की तलाश का एक विमर्शन करता हुआ जीवन की परख के लिए प्रेरित करता है। अपर्णा शर्मा के कहानी-संग्रह-'खो गया गाँव' की कहानियों में बदलते जीवन-संदर्भों में जीवन की तलाश और उसके अन्तर्विरोध समाहित हैं जो बदलती जीवन-राहों पर विमर्शन के लिए प्रेरित करते हैं।

मानव जीवन में पुरुष-जीवन और नारी-जीवन का सह सम्बन्ध परिवार और समाज का सांस्कृतिक कारक है। इसके विमर्शन-क्रम में नारी के स्वरूप को केवल पत्नी रूप में और माता के रूप में ही अधिक महत्त्व दिया गया। नारी के ये दोनों रूप उसके मूल पितृपक्ष से कोई सम्बन्ध नहीं रखते। पितृगृह में नारी का पुत्री में न कोई अधिकार है और न उत्तरदायित्व। विस्थापन उसकी नियति है जिसकी छाया उसके शैशव से ही उसके चारों ओर घूमती है। परिवार उसे कभी अपना नहीं मानता उसे 'पराया धन' कहकर परिवार-चक्र से अलग समझा जाता है।

यह विस्थापन शादी के रूप में नारी जीवन में आता है। एक ओर जहाँ यह, समाज की सरंचना का कारक है, परिवार नामक संस्था का संरक्षक है वहीं वैयक्तिक रूप नारी जीवन को खण्डशः विभाजित कर देता है। नारी का विवाह-पूर्व जीवन जो उसके पितृगृह में व्यतीत होता है जहाँ न उसका कोई स्थायी अधिकार और न उस परिवार के प्रति उत्तरदायित्व। यही कारण भारतीय सामाजिक संस्कृति के चिन्तन में 'पुत्रिका' धर्म का कोई स्वरूप नहीं है। माता-पिता का उसके लिए दायित्व केवल गृहस्थ धर्मी शिक्षा देकर केवल उसकी शादी करना है। कन्या का कैशोय उसके माता-पिता को यह सूचना देता है कि नवयौवन के उन्मेष के साथ कन्या अपने पति कुल में पहुँच जाय।''[1] यही कारण है कन्या के जीवन को उन्हीं संस्कारों में घेरने का प्रयत्न किया जाता है जिससे उसमें आदर्श गृहिणी का स्वरूप विकसित हो। वह प्रेमपूर्ण संभाषण और व्यवहार[2] सीखे।

नारी-जीवन क्या है और जीवन व्यवस्था के साथ उसका क्या सम्बन्ध होना चाहिए। बदलते समाज में यह एक बिन्दु नया रूप लेता जा रहा है उसके साथ अनेक विसंगतियाँ भी जीवन में आ रही है। समाज में होते इस परिवर्तन को संवेदनशील साहित्यकार विमर्श का विषय बनाकर अपनी रचनाओं के रूप में प्रस्तुत कर रहे हैं। जीवन की राहों की तलाश उन्हें सोचने को विवश कर रही है। अपर्णा शर्मा ने अपनी कहानियों में इस विषय के साथ समाज में हो रही जीवन की तलाश को उसके अन्दर निहित अन्तर्विरोधों के साथ प्रस्तुत किया है। दादी की शादी, पगली की वापसी, मेरी बेटी हरी मिर्च, चक्कर एडवांस का, लम्बी चोटी, आखिर कब तक, समर्थ, तथा बड़ी बहिन ऐसी कहानियाँ[3] है जो नारी जीवन के सन्दर्भों को लेकर नारी द्वारा जीवन की तलाश और विसंगतिजन्य कशमकश को संवेदनशीलता के साथ प्रस्तुत करती हैं। अपर्णा शर्मा की कहानियों में जीवन की तलाश के सन्दर्भ में हम उनकी एक-दो कहानियों को नारी के जीवन के सांस्कृतिक विकास के साथ लेंगे। इस कहानियों की चेतना

से ही स्पष्ट हो जायेगा कि अपर्णा शर्मा की कहानियाँ एक अन्तर्विरोध का सामना करती हुई दिखाई देती हैं। इनमें चित्रित नारी-जीवन एक कमशकश में दिखाई देता है वह नये जीवन की तलाश के साथ बहुत कुछ ऐसा खो देता है जिससे उसमें निराशा कुंठा जन्म लेती है जीवन में सरसता और समरसता नहीं आती, असंतोष व टूटन और घुटन उसके जीवन का अंग बन जाती है।

नारी के परम्परागत लोक और शास्त्र-'सम्मत जीवन की आत्मकथात्मक व्यंजना है-'' मैं बाहर के जगत् में कर्तृत्त्व नहीं चाहती। वह मेरे पिता, पति, भाई और पुत्र की कर्मभूमि है। उन्हें कोई क्षेत्र नहीं मिलेगा तो वे क्या करेंगे। परन्तु मेरी कर्मभूमि उनकी कर्मभूमि से विशाल है। पुरुष जिस काम को नहीं कर सकता उसको मैं अनायास ही कर सकती हूँ।''[4]

आज के नारी-जीवन ने पुरुष की अलग कर्मभूमि के मिथक को तोड़ दिया है अपनी शक्ति का परिचय दे दिया है लेकिन क्या उससे वह आत्यान्तिक आनंद प्राप्त कर रही है। यही अन्तर्विरोध अपर्णा शर्मा की कहानियों में व्यंजित होता है।

नारी की आत्मकथात्मक व्यंजना यह भी है ''मैं स्वाधीन हूँ, परन्तु उच्छृंखल नहीं हूँ....मेरा कर्मक्षेत्र बहुत बड़ा है-वह बाहर नहीं अंदर है। वहाँ मेरी बराबरी की समझ रखने वाला कोई है ही नहीं। मैं जिधर देखती हूँ उधर ही अपना अप्रतिहत कर्तृत्त्व पाती हूँ। मेरे कर्तृत्त्व में बाधा देने वाला कोई नहीं है क्योंकि मैं वैसा सुअवसर किसी को देती ही नहीं।''[5]

नारी की इसी अप्रतिहत शक्ति और स्वभाव की प्रतीक इस अपर्णा शर्मा की कहानी 'दीदी की शादी' की मुख्य पात्र मीनाक्षी (दीदी) इस कहानी में बदलते जीवन-सन्दर्भ में 'पुत्री-धर्म' की नई परिभाषा और एक नये जीवन की तलाश है। इस कहानी के केन्द्र में दीदी मीनाक्षी है। मीनाक्षी के जीवन के विकास-क्रम में तीन पीढ़ियों के सोच का क्रमिक विकास जिससे जीवन की राहों की तलाश का मार्ग खुलता है। पहला सोच दादी का है ''दादी चाहती थी कि पोती थोड़ा पढ़ना-लिखना सीख ले और फिर घर के कार्यों में निपुणता हासिल करे-अपनी गाने, नाचने सिलाई कढ़ाई और पाक कला की शिक्षा दीदी को तीन-चार वर्ष की उम्र से ही देने लगी थी ....चौदह की उम्र पार करते-करते मीनाक्षी का रूप निखरने लगा और दादी ने उसकी तैयारियाँ शुरू कर दी।''[6]

नारी जीवन के विकास क्रम की दूसरी मीनाक्षी के पिता की है जो नारी जीवन की सार्थकता की प्रतिपूर्ति नारी-शिक्षा से जोड़कर देखते हैं ओर दादी से कहते हैं ''अभी मीनाक्षी की उम्र ही क्या है थोड़ा और पढ़ ले।''[7]

नारी-जीवन का यही विकास-क्रम मीनाक्षी के रूप में नई राहें तलाशता है, अपनी कर्मभूमि बदलता है, लोक और शास्त्र, सम्मत परम्परा को तोड़ता है, समय की माँग की प्रतिपूर्ति करता है-

''दीदी ने अपना खर्च स्वयं उठाते हुए एम. ए. प्रथम श्रेणी में पास किया...घर की आर्थिक तंगी को देखते हुए दीदी नहीं चाहती थी कि परिवार को संकट में छोड़कर ससुराल चली जाय....भाई-बहिन को खूब पढ़ाना और ऊँचे मुकाम तक पहुँचाना ही उसने अपना ध्येय बना लिया।''[8]

इसी राह पर चलते मीनाक्षी की उम्र ढल गई। उसके सामने अब कोई जीवन की मंज़िल नहीं थी-बड़ी की उम्र ढलान पर थी, अतः सुन्दर और कमाऊँ होकर भी वह छोटी से पिछड़ गई।''[9]

नये जीवन की इस राह पर चलकर मीनाक्षी, संतुष्ट नहीं है। कुंठाएँ उसके जीवन रस को सुखा देती है-'दीदी आहिस्ता-आहिस्ता चिड़चिड़ी और सख्त होती जा रही थी-अब कॉलेज में भी पहले जैसी हँसमुख नहीं रही। वह अडियल और शंकालु भी हो रही थी।''[10]

छोटी बहिन नीलू की शादी में वही गहने। पायल जो दीदी की शादी के लिए दादी द्वारा तैयार करायें गये भी दीदी द्वारा नीलू को पहनाये जाते समय नीलू के रूदन में दीदी द्वारा तलाशे गये जीवन में नारी के करूण-कुन्दन का संकेत करते है। दीदी का जीवन जो उसने कर्मभूमि के रूप में चुना था नारी को जीवन का संतोष नहीं देता केवल टूटन ही देता है।

जीवन की इस तलाश को नारी जीवन की अनेक दिशाओं में अपर्णा शर्मा की कहानियाँ चित्रित करती हैं-पगली की वापसी कहानी पुरुष जीवन द्वारा पीड़ित नारी की कहानी है। पति की मद्यपान की आदत के परिणाम स्वरूप विमला मानसिक विकार की शिकार हो जाती है। उसे उसके न चाहते हुए भी पागलखानें भरती कर दिया जाता है। पति द्वारा गलत पता दिये जाने के कारण वह निराश मन से अस्पताल में समाज सेवा का जीवन चुनती हैं, एक नये जीवन की तलाश करती है-

''यहाँ से विमला की नई ज़िंदगी की शुरूआत होती है-

-तुम्हारे पिता द्वारा दिये गये पते पर डाले गये पत्रों का जब कोई जवाब नहीं मिला तो पागलखाने वालों ने उसे जाली समझा और वहीं रह गयी। तब से हर दिन मैंने अपने जैसी मजबूत औरतों की ज़िंदगी सँवारने में लगाया है।''[12]

शेष भाग पृ. 69 पर .....

कहानी

भिखारी

मूल लेखक–अन्तोन चेखव
मूल रूसी से अनुवाद– यूजीनिया वानिना

—— ओ साहिब जी, एक भूखे बेचारे पर दया कीजिए! तीन दिन का भूखा हूँ। रात बिताने के लिए जेब में एक पैसा भी नहीं...

—— पूरे आठ साल तक एक गाँव में स्कूल मास्टर रहा. .. बड़े लोगों की बदमाशी से नौकरी चली गई... जुल्म का शिकार बना हूँ... अभी साल पूरा हुआ है बेरोजगार भटकते फिरते हुए...

बैरिस्टर स्क्वार्त्सोफ ने भिखारी के मैले-कुचैले कोट, नशे से गंदली आँखें, गालों पर लगे हुए लाल धब्बे देखे। उन्हें लगा कि इस आदमी को कहीं पहले देखा है।

—— अभी मुझे कलूगा जिले में नौकरी मिलने ही वाली है, ... भिखारी आगे बोलता गया.... पर उधर जाने के लिए पैसे नहीं हैं। कृपा करके मदद कीजिए साहिब... भीख माँगना शर्म का काम है, पर क्या करूँ, मजबूर हूँ...

स्क्वार्त्सोफ ने उसके रबर के जूतों पर नज़र डाली जिन में से एक नाप में छोटा और एक बड़ा था तो उन्हें एकदम याद आया।

—— सुनिए, तीन दिन पहले मैंने आपको सदोवाया सड़क पर देखा था, —— बैरिस्टर बोले, —— आप ही थे न? पर उस वक्त आपने मुझे बताया था कि आप स्कूल मास्टर नहीं, बल्कि एक छात्र हैं जिसे कॉलिज से निकाल दिया गया है। याद आया?

—— न...नहीं... यह नहीं हो सकता, ...भिखारी घबराकर बुदबुदाया। .... मैं गाँव में मास्टर ही था... चाहें तो कागज़ात दिखा दूँ...

—— झूठ मत बोलो ! तुमने मुझे बताया था कि तुम एक छात्र हो, कॉलिज छूटने की कहानी भी सुनाई थी मुझे! अब याद आया?

स्क्वार्त्सोफ साहब का चेहरा गुस्से से तमतमा उठा। घृणा से मुँह बिचकाकर वे भिखारी से दो कदम पीछे हट गए। फिर क्रोध भरे स्वर में चिल्लाए....

—— कितने नीच हो तुम! बदमाश कहीं के! मैं तुम्हें पुलिस के हवाले कर दूँगा! भूखे हो, गरीब हो, यह ठीक है, पर इस बेशर्मी से झूठ क्यों बोलते हो?

भिखारी ने दरवाजे के हत्थे पर अपना हाथ रखकर पकड़े गए चोर की तरह नज़र दौड़ाई।

—— मैं... मैं झूठ नहीं बोलता... वह बुदबुदाया... मैं कागज़ात....

—— अरे कौन विश्वास करेगा! —— स्क्वार्त्सोफ साहिब का क्रोध बढ़ता गया... गाँव के मास्टरों और गरीब विद्यार्थियों पर समाज जो सहानुभूति दिखाता आया है, उससे लाभ उठाना कितना गन्दा, नीच और घिनौना काम है!

स्क्वार्त्सोफ साहब क्रोध से आग बबूला हो उठे और भिखारी को बुरी तरह कोसने लगे। अपनी इस निर्लज्ज धोखेबाजी से उस आवारा आदमी ने उनके मन में घृणा पैदा कर दी थी और उन भावनाओं का अपमान किया था जो स्क्वार्त्सोफ साहब को अपने चरित्र में सब से मूल्यवान लगती थीं। उनकी उदारता, भावुकता, गरीबों पर दया, वह भीख जो वे खुले दिल से माँगने वालों को दिया करते थे .... सब कुछ अपवित्र करके मिट्टी में मिला दिया इस बदमाश ने! भिखारी भगवान का नाम लेकर अपनी सफाई देता रहा, फिर चुप हो गया और उसने शर्म से सर झुका लिया। फिर दिल पर हाथ रखकर बोला...

—— साहिब, मैं सचमुच झूठ बोल रहा था। न मैं छात्र हूँ और न मास्टर। मैं एक संगीत मण्डली में था। फिर शराब पीने लगा और अपनी नौकरी खो बैठा। अब क्या करूँ? भगवान ही मेरा साक्षी है, बिना झूठ बोले काम नहीं चलता! जब सच बोलता हूँ तो कोई भीख भी नहीं देता! सच को लेकर भूखों मरना होगा या सर्दी में बेघर जम जाना होगा, बस! कहते तो आप सही हैं, यह मैं भी समझता हूँ, पर क्या करूँ?

—— करना क्या है? तुम पूछ रहे हो कि करना क्या है! ... स्क्वार्त्सोफ साहब उसके निकट आकर बोले, ... काम करना चाहिए! काम करना चाहिए और क्या !

—— काम करना चाहिए! यह तो मैं भी समझता हूँ, पर नौकरी कहाँ मिलेगी?

—— क्या बकवास है! जवान हो, ताकतवर हो, चाहो तो

नौकरी क्यों नहीं मिलेगी? पर तुम तो सुस्त हो, निकम्मे हो, शराबी हो! तुम्हारे मुँह से तो वोदका की बदबू आ रही है जैसे किसी शराब की दुकान से आती है! झूठ, शराब और आरामतलबी तुम्हारे खून की बूँद-बूँद तक पहुँच चुके हैं! भीख माँगने और झूठ बोलने के अलावा तुम और कुछ जानते ही नहीं! कभी नौकरी कर लेने का कष्ट उठा भी लेंगे जनाब तो बस किसी दफ़्तर में या संगीत-मण्डली में या किसी और जगह जहाँ मक्खी मारते-मारते पैसे कमा लें! मेहनत-मजदूरी क्यों नहीं करते? भंगी या कुली क्यों नहीं बन जाते? खुद को बहुत ऊँचा समझते हो!

— कैसी बात कर रहे हैं आप? - भिखारी बोला। मुँह पर एक तिक्त मुस्कान उभरी। ... मेहनत-मजदूरी कहाँ से मिलेगी? किसी दुकान में नौकरी नहीं कर सकता, क्योंकि व्यापार बचपन से ही सीखा जाता है। भंगी भी कैसे बनूँ, कुलीन घर का हूँ... फैक्टरी में भी काम करने के लिए कोई पेशा तो आना चाहिए, मैं तो कुछ नहीं जानता।

— बकवास कर रहे हो! कोई न कोई कारण ढूँढ़ ही लोगे! क्यों जनाब, लकड़ी फाड़ोगे?

- मैंने कब इनकार किया है, पर आज लकड़ी फाड़ने वाले मजदूर भी तो बेकार बैठे हैं!

— सभी निकम्मे लोगों का यही गाना है! मैं मजदूरी दिलवाता तो मुँह फेरकर भागोगे! क्या मेरे घर में लकड़ी फाड़ोगे?

— आप चाहें तो क्यों नहीं करूँगा...

— वाह रे! देखें तो सही!

स्क्वार्त्सोफ साहब ने जल्दी से अपनी रसोई से अपनी बावरचिन को बुलाया और नाराज़गी से बोले-

— ओल्गा, इन साहब को जलाऊँ लकड़ी की कोठरी में ले जाओ। इनको लकड़ी फाड़ने के लिए दे दो!

भिखारी अनमना-सा कन्धे हिलाकर बावरचिन के पीछे-पीछे चल पड़ा। उसके चाल-चलन से यह साफ दिखाई दे रहा था कि वह भूख और बेकारी के कारण नहीं, बस अपने स्वाभिमान की वजह से ही यह काम करने के लिए मान गया है। यह भी लग रहा था कि शराब पीते-पीते वह कमजोर और अस्वस्थ हो चुका है। काम करने की कोई भी इच्छा नहीं है उसकी।

स्क्वार्त्सोफ साहब अपने डाइनिंग-रूम पहुँचे जहाँ से आँगन और कोठरी आसानी से दिखाई दे रहे थे। खिड़की के पास खड़े होकर उन्होंने देखा कि बावरचिन भिखारी को पीछे के दरवाज़े से आँगन में ले आई है। गन्दी-मैली बर्फ को रौंदते हुए वे दोनों कोठरी की ओर बढ़े। भिखारी को क्रोध भरी आँखों से देखती ओल्गा ने कोठरी के कपाट खोल दिए और फिर धड़ाम से दीवार से भिड़ा दिए।

- लगता है, हमने ओल्गा को काफी नहीं पीने दी। स्क्वार्त्सोफ साहब ने सोचा, — कितनी जहरीली औरत है!

फिर उन्होंने देखा कि झूठा मास्टर लकड़ी के एक मोटे कुन्दे पर बैठ गया और अपने लाल गालों को अपनी मुट्ठियों में दबोचकर किसी सोच-विचार में डूब गया। ओल्गा ने उसके पैरों के पास कुल्हाड़ी फेंककर नफरत से थूक दिया और गालियाँ बकने लगी। भिखारी ने डरते-डरते लकड़ी का एक कुन्दा अपनी ओर खींचा और उसे अपने पैरों के बीच रखकर कुल्हाड़ी का एक कमजोर-सा वार किया। कुन्दा गिर गया। भिखारी ने उसे दुबारा थामकर और सर्दी से जमे हुए अपने हाथों पर फूँक मारकर कुल्हाड़ी इस तरह चलाई जैसे वह डर रहा हो कि कहीं अपने घुटने या पैरों की उँगलियों पर ही प्रहार न हो जाए। लकड़ी का कुन्दा फिर गिर गया।

स्क्वार्त्सोफ साहब का क्रोध टल चुका था। उन्हें खुद पर कुछ-कुछ शर्म आने लगी कि इस निकम्मे, शराबी और शायद बीमार आदमी से सर्दी में भारी मेहनत-मजदूरी किस लिए करवाई।

— चलो, कोई बात नहीं, — अपने लिखने-पढ़ने के कमरे में जाते समय उन्होंने सोचा, — उस की भलाई ही होगी!

एक घण्टे बाद ओल्गा ने अपने मालिक को सूचित किया कि काम पूरा हो गया है।

— लो, उसे पचास कोपेक दे दो, — स्क्वार्त्सोफ साहब ने कहा, — चाहो तो हर पहली तारीख को लकड़ी फाड़ने आ जाया करो। काम मिल जाएगा।

अगले महीने की पहली तारीख को भिखारी फिर आ गया। शराब के नशे में लड़खड़ाने पर भी उसने पचास कोपेक कमा ही लिए। उस दिन से वह जब-तब आया ही करता था। हर बार कोई न कोई काम कर ही लेता। कभी आँगन से बर्फ हटाता था, कभी कोठरी साफ करता था, कभी कालीनों और मेट्रेसों से धूल निकालता था। हर बार वह बीस-चालीस कोपेक कमाता था और एक बार स्क्वार्त्सोफ साहब ने उसे अपने पुराने पतलून भी भिजवाए थे।

नए फ्लैट में जाते समय स्क्वार्त्सोफ साहब ने उसे फर्नीचर बाँधने और उठाकर ले जाने में कुलियों की मदद करने को कहा। उस दिन भिखारी संजीदा, उदास और चुप था। फर्नीचर पर हाथ बहुत कम रखता था, सर झुकाए इधर-उधर मण्डरा रहा था। काम करने का बहाना भी नहीं कर रहा था, बस सर्दी से सिकुड़ता रहा था और जब दूसरे कुली

उसकी सुस्ती, कमजोरी और फटे-पुराने 'साहब किस्म के' ओवरकोट का मज़ाक उड़ाते थे तो शरमाता रहा था। काम पूरा हुआ तो स्क्वार्त्सोफ साहब ने उसे अपने पास बुला भेजा।

— लगता है, तुम पर मेरी बातों का कुछ असर पड़ा है, — भिखारी के हाथ में एक रूबल पकड़ाते हुए उन्होंने कहा, — यह लो अपनी कमाई। देखता हूँ तुमने पीना छोड़ दिया है और मेहनत के लिए तैयार हो। हाँ, नाम क्या है तुम्हारा?

— जी, लुश्कोफ...

— तो, लुश्कोफ, अब मैं तुम्हें कोई दूसरा और साफ-सुथरा काम दिलवा सकता हूँ। पढ़ना-लिखना जानते हो?

— जी हाँ...

— तो यह चिट्ठी लेकर कल मेरे एक दोस्त के यहाँ चले जाना। कागज़ातों की नकल करने की नौकरी है। सच्चे मन से काम करना, शराब मत पीना, मेरा कहना मत भूलना। जाओ!

एक पापी को सही रास्ता दिखाकर स्क्वार्त्सोफ साहब बहुत प्रसन्न थे। उन्होंने लुश्कोफ के कन्धे पर एक प्यार की थपकी दी और उसे छोड़ने बाहर दरवाज़े तक आए फिर उससे हाथ भी मिलाया। लुश्कोफ वह चिट्ठी लेकर चला गया और उस दिन के बाद फिर कभी नहीं आया।

दो साल बीत गए। एक दिन थिएटर की टिकट-खिड़की के पास स्क्वार्त्सोफ साहब को छोटे कद का एक आदमी दिखाई दिया। वह भेड़ के चमड़े की गरदनी वाला ओवरकोट और एक पुरानी-सी पोस्तीन की टोपी पहने हुए था। उसने डरते-डरते सब से सस्ता टिकट माँगा और पाँच-पाँच कोपेक के सिक्के दे दिए।

— अरे लुश्कोफ, तुम! ... स्क्वार्त्सोफ ने अपने उस मजदूर को पहचान लिया, — कैसे हो? क्या करते हो? ज़िन्दगी ठीक-ठाक है न?

— जी हाँ, ठीक-ठाक है, साहिब जी... अब मैं उसी नोटरी के यहाँ काम करता हूँ, पैंतीस रूबल कमाता हूँ...

... भगवान की! वाह, भाई, वाह! बड़ी खुशी की बात है! बहुत प्रसन्न हूँ! सच पूछो तो तुम मेरे शिष्य जैसे हो न! मैंने तुम्हें एक सच्चा रास्ता दिखाया था! याद है, कितना कोसा था तुमको? कान गर्म हुए होंगे मेरी बातें सुनकर! धन्य हो, भाई, कि मेरे वचनों को तुम भूले नहीं!

— धन्य हैं आप भी, - लुश्कोफ बोला, — आपके पास न आता तो अब तक खुद को मास्टर या छात्र बतलाकर धोखेबाजी करता फिरता! आपने मुझे खाई से निकालकर डूबने से बचाया है!

— बहुत, बहुत खुशी की बात है!

— आपने बहुत अच्छा कहा भी और किया भी! मैं आपका आभारी हूँ और आपकी बावरचिन का भी, भगवान उस दयालु उदार औरत की भलाई करे! आपने उस समय बहुत-सी और अच्छी बातें की थी, मैं उम्र भर आपका आभारी रहूँगा, पर सच पूछिए तो आपकी बावरचिन ओल्गा ही ने मुझे बचाया है!

— वह कैसे?

— बात ऐसी है साहिब जी। जब-जब मैं लकड़ी फाड़ने आया करता था वह मुझे कोसती रहती — 'अरे शराबी! तुझ पर ज़रूर कोई शाप लग गया है! मर क्यों नहीं जाता!' फिर मेरे सामने उदास बैठ जाती और मेरा मुँह देखते-देखते रो पड़ती — 'हाय बेचारा! इस लोक में कोई भी खुशी नहीं देख पाया और परलोक में भी नरक की आग में ही जाएगा! हाय बेचारा, दुखियारा!' वह बस इसी ढंग की बातें किया करती थी। उसने अपना कितना खून जलाया मेरे कारण, कितने आँसू बहाए, मैं आपको बता नहीं सकता! पर सब से बड़ी बात यह हुई कि वह ही मेरा सारा काम पूरा करती रहती थी! सच कहता हूँ साहिब, आपके यहाँ मैंने एक भी लकड़ी नहीं फाड़ी, सब कुछ वही करती थी! उसने मुझे कैसे बचाया, उसको देखकर मैंने पीना क्यों छोड़ दिया, क्यों बदल गया मैं, आपको कैसे समझाऊँ। इतना ही जानता हूँ कि उसके वचनों और उदारता की वजह से मैं सुधर गया और मैं यह कभी नहीं भूलूँगा। हाँ साहिब जी, अब जाना है, नाटक शुरू होने की घण्टी बज रही है...

लुश्कोफ सर झुकाकर अपनी सीट की ओर बढ़ गया।

कहानी

एक छोटा–सा मज़ाक

मूल लेखक–अन्तोन चेखव
मूल रूसी भाषा से अनुवाद – अनिल जनविजय

सर्दियों की खूबसूरत दोपहर... सर्दी बहुत तेज़ है। नाद्या ने मेरी बाँह पकड़ रखी है। उसके घुँघराले बालों में बर्फ इस तरह जम गई है कि वे चाँदनी की तरह झलकने लगे हैं। होंठों के ऊपर भी बर्फ की एक लकीर-सी दिखाई देने लगी है। हम एक पहाड़ी पर खड़े हुए हैं। हमारे पैरों के नीचे मैदान पर एक ढलान पसरी हुई है जिसमें सूरज की रोशनी ऐसे चमक रही है जैसे उसकी परछाई शीशे में पड़ रही हो। हमारे पैरों के पास ही एक स्लेज पड़ी हुई है जिसकी गद्दी पर लाल कपड़ा लगा हुआ है।

— चलो नाद्या, एक बार फिसलें! — मैंने नाद्या से कहा।

सिर्फ एक बार! घबराओ नहीं, हमें कुछ नहीं होगा, हम ठीक-ठाक नीचे पहुँच जाएँगे।

लेकिन नाद्या डर रही है। यहाँ से, पहाड़ी के कगार से, नीचे मैदान तक का रास्ता उसे बेहद लम्बा लग रहा है। वह भय से पीली पड़ गई है। जब वह ऊपर से नीचे की ओर झाँकती है और जब मैं उससे स्लेज पर बैठने को कहता हूँ तो जैसे उसका दम निकल जाता है। मैं सोचता हूँ, लेकिन तब क्या होगा, जब वह नीचे फिसलने का खतरा उठा लेगी! वह तो भय से मर ही जाएगी या पागल ही हो जाएगी।

— मेरी बात मान लो! — मैंने उससे कहा — नहीं-नहीं, डरो नहीं, तुममें हिम्मत की कमी है क्या?

आखिरकार वह मान जाती है। और मैं उसके चेहरे के भावों को पढ़ता हूँ। ऐसा लगता है जैसे मौत का खतरा मोल लेकर ही उसने मेरी यह बात मानी है। वह भय से सफेद पड़ चुकी है और काँप रही है। मैं उसे स्लेज पर बैठाकर, उसके कन्धों पर अपना हाथ रखकर उसके पीछे बैठ जाता हूँ। हम उस अथाह गहराई की ओर फिसलने लगते हैं। स्लेज गोली की तरह बड़ी तेज़ी से नीचे जा रही है। बेहद ठंडी हवा हमारे चेहरों पर चोट कर रही है। हवा से चिंघाड़ रही है कि लगता है, मानों कोई तेज़ सीटी बजा रहा हो। हवा जैसे गुस्से से हमारे बदन को चीर रही है, वह हमारे सिर उतार लेना चाहती है। हवा इतनी तेज़ है कि साँस लेना भी मुश्किल है। लगता है, मानों शैतान हमें अपने पंजों में जकड़कर गरज़ते हुए नरक की ओर खींच रहा है। आसपास की सारी चीज़ें जैसे एक तेज़ी से भागती हुई लकीर में बदल गई हैं। ऐसा महसूस होता है कि आने वाले पल में ही हम मर जाएँगे।

मैं तुम से प्यार करता हूँ, नाद्या! — मैं धीमे से कहता हूँ।

स्लेज की गति धीरे-धीरे कम हो जाती है। हवा का गरजना और स्लेज का गूँजना अब इतना भयानक नहीं लगता। हमारे दम में दम आता है और आखिरकार हम नीचे पहुँच जाते हैं। नाद्या अधमरी-सी हो रही है। वह सफेद पड़ गई है। उसकी साँसें बहुत धीमी-धीमी चल रही हैं... मैं उसकी स्लेज से उठने में मदद करता हूँ।

अब चाहे जो भी हो जाए मैं कभी नहीं फिसलूँगी, हरगिज नहीं! आज तो मैं मरते-मरते बची हूँ। — मेरी ओर देखते हुए उसने कहा। उसकी बड़ी-बड़ी आँखों में खौफ का साया दिखाई दे रहा है। पर थोड़ी ही देर बाद वह सहज हो गई और मेरी ओर सवालिया निगाहों से देखने लगी। क्या उसने सचमुच वे शब्द सुने थे या उसे ऐसा बस महसूस हुआ था, सिर्फ हवा की गरज थी वह? मैं नाद्या के पास ही खड़ा हूँ। मैं सिगरेट पी रहा हूँ और अपने दस्ताने को ध्यान से देख रहा हूँ।

नाद्या मेरा हाथ अपने हाथ में ले लेती है और हम देर तक पहाड़ी के आसपास घूमते रहते हैं। यह पहेली उसको परेशान कर रही है। वे शब्द जो उसने पहाड़ी से नीचे फिसलते हुए सुने थे, सच में कहे गए थे या नहीं? यह बात वास्तव में हुई या नहीं। यह सच है या झूठ? अब यह सवाल उसके लिए स्वाभिमान का सवाल हो गया है। उसकी इज़्जत का सवाल हो गया है। जैसे उसकी ज़िन्दगी और उसके जीवन की खुशी इस बात पर निर्भर करती है। यह बात उसके लिए महत्त्वपूर्ण है, दुनिया में शायद सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण। नाद्या मुझे अपनी अधीरता भरी उदास नज़रों से ताकती है, मानों मेरे अन्दर की बात भाँपना चाहती हो। मेरे सवालों का वह कोई असंगत-सा उत्तर देती है। वह इस इन्तज़ार में है कि मैं उससे

फिर वही बात शुरू करूँ। मैं उसके चेहरे को ध्यान से देखता हूँ — अरे, उसके प्यारे चेहरे पर ये कैसे भाव हैं? मैं देखता हूँ कि वह अपने आप से लड़ रही है, उसे मुझसे कुछ कहना है, वह कुछ पूछना चाहती है। लेकिन वह अपने ख़्यालों को, अपनी भावनाओं को शब्दों के रूप में प्रकट नहीं कर पाती। वह झेंप रही है, वह डर रही है, उसकी अपनी ही खुशी उसे तंग कर रही है...।

— सुनिए! — मुझसे मुँह चुराते हुए वह कहती है।

— क्या बात है? — मैं पूछता हूँ।

— चलिए, एक बार फिर फिसलें।

हम फिर से पहाड़ी के ऊपर चढ़ जाते हैं। मैं फिर से भय से सफेद पड़ चुकी और काँपती हुई नाद्या को स्लेज पर बैठाता हूँ। हम फिर से भयानक गहराई की ओर फिसलते हैं। फिर से हवा की गरज और स्लेज की गूँज हमारे कानों को फाड़ती है और फिर जब शोर सबसे अधिक था मैं धीमी आवाज़ में कहता हूँ — मैं तुम से प्यार करता हूँ, नाद्या।

नीचे पहुँचकर जब स्लेज रुक जाती है तो नाद्या एक नज़र पहले ऊपर की तरफ ढलान को देखती है जिससे हम अभी-अभी नीचे फिसले हैं, फिर दूसरी नज़र मेरे चेहरे पर डालती है। वह ध्यान से मेरी बेपरवाह और भावहीन आवाज़ को सुनती है। उसके चेहरे पर हैरानी है। न सिर्फ चेहरे पर बल्कि उसके सारे हाव-भाव से हैरानी झलकती है। वह चकित है और जैसे उसके चेहरे पर यह लिखा है- क्या बात है? वे शब्द किसने कहे थे? शायद इसी ने? या हो सकता है मुझे बस, ऐसा लगा हो, बस ऐसे ही वे शब्द सुनाई दिए हों?

उसकी परेशानी बढ़ जाती है कि वह इस सच्चाई से अनभिज्ञ है। यह अनभिज्ञता उसकी अधीरता को बढ़ाती है। मुझे उस पर तरस आ रहा है। बेचारी लड़की! वह मेरे प्रश्नों का कोई उत्तर नहीं देती और नाक-भौंह चढ़ा लेती है। लगता है, वह रोने ही वाली है।

— घर चलें? — मैं पूछता हूँ।

— लेकिन मुझे...मुझे तो यहाँ फिसलने में खूब मज़ा आ रहा है। — वह शर्म से लाल होकर कहती है और फिर मुझ से अनुरोध करती है — और क्यों न हम एक बार फिर फिसलें?

हमें... तो उसे यह फिसलना 'अच्छा लगता है'। पर स्लेज पर बैठते हुए तो वह पहले की तरह ही भय से सफेद दिखाई दे रही है और काँप रही है। उसे साँस लेना भी मुश्किल हो रहा है। लेकिन मैं अपने होंठों को रूमाल से पोंछकर धीरे से खाँसता हूँ और जब फिर से नीचे फिसलते हुए हम आधे रास्ते में पहुँच जाते हैं तो मैं एक बार फिर कहता हूँ — मैं तुम से प्यार करता हूँ, नाद्या!

और यह पहेली पहेली ही रह जाती है। नाद्या चुप रहती है, वह कुछ सोचती है... मैं उसे उसके घर तक छोड़ने जाता हूँ। वह धीमे-धीमे कदमों से चल रही है और इन्तज़ार कर रही है कि शायद मैं उससे कुछ कहूँगा। मैं यह नोट करता हूँ कि उसका दिल कैसे तड़प रहा है। लेकिन वह चुप रहने की कोशिश कर रही है और अपने मन की बात को अपने दिल में ही रखे हुए है। शायद वह सोच रही है।

दूसरे दिन मुझे उसका एक रुक्का मिलता है- 'आज जब आप पहाड़ी पर फिसलने के लिए जाएँ तो मुझे अपने साथ ले लें- नाद्या।' उस दिन से हम दोनों रोज़ फिसलने के लिए पहाड़ी पर जाते हैं और स्लेज पर नीचे फिसलते हुए हर बार मैं धीमी आवाज़ में वे ही शब्द कहता हूँ- मैं तुम से प्यार करता हूँ, नाद्या!

जल्दी ही नाद्या को इन शब्दों का नशा-सा हो जाता है, वैसा ही नशा जैसा शराब या मार्फीन का नशा होता है। वह अब इन शब्दों की खुमारी में रहने लगी है। हालाँकि उसे पहाड़ी से नीचे फिसलने में पहले की तरह डर लगता है लेकिन अब भय और खतरा मोहब्बत से भरे उन शब्दों में एक नया स्वाद पैदा करते हैं जो पहले की तरह उसके लिए एक पहेली बने हुए हैं और उसके दिल को तड़पाते हैं। उसका शक हम दो ही लोगों पर है - मुझ पर और हवा पर। हम दोनों में से कौन उसके सामने अपनी भावना का इज़हार करता है, उसे पता नहीं। पर अब उसे इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता। शराब चाहे किसी भी बर्तन से क्यों न पी जाए — नशा तो वह उतना ही देती है।

अचानक एक दिन दोपहर के समय मैं अकेला ही उस पहाड़ी पर जा पहुँचा। भीड़ के पीछे से मैंने देखा कि नाद्या उस ढलान के पास खड़ी है, उसकी आँखें मुझे ही तलाश रही हैं। फिर वह धीरे-धीरे पहाड़ी पर चढ़ने लगती है...अकेले फिसलने में हालाँकि उसे डर लगता है, बहुत ज़्यादा डर! वह बर्फ की तरह सफेद पड़ चुकी है, वह काँप रही है, जैसे उसे फाँसी पर चढ़ाया जा रहा हो। पर वह आगे ही आगे बढ़ती जा रही है, बिना झिझके, बिना रुके। शायद आखिर उसने फैसला कर ही लिया कि वह इस बार अकेली नीचे फिसल कर देखेगी कि 'जब मैं अकेली होऊँगी तो क्या मुझे वे मीठे शब्द सुनाई देंगे या नहीं?' मैं देखता हूँ कि वह बेहद घबराई हुई भय से मुँह खोलकर स्लेज पर बैठ जाती है। वह अपनी आँखें बंद कर लेती है और जैसे जीवन से विदा लेकर नीचे की ओर फिसल पड़ती है... स्लेज के फिसलने की गूँज सुनाई पड़ रही है। नाद्या को वे शब्द सुनायी दिये या नहीं - मुझे

नहीं मालूम... मैं बस यह देखता हूँ कि वह बेहद थकी हुई और कमजोर-सी स्लेज से उठती है। मैं उसके चेहरे पर यह पढ़ सकता हूँ कि वह खुद नहीं जानती कि उसे कुछ सुनायी दिया या नहीं। नीचे फिसलते हुए उसे इतना डर लगा कि उसके लिए कुछ भी सुनना या समझना मुश्किल था।

फिर कुछ ही समय बाद बसन्त का मौसम आ गया। मार्च का महीना है... सूरज की किरणें पहले से अधिक गरम हो गई हैं। हमारी बर्फ से ढकी वह सफेद पहाड़ी भी काली पड़ गई है, उसकी चमक खत्म हो गई है। धीरे-धीरे सारी बर्फ पिघल जाती है। हमारा फिसलना बन्द हो गया है और अब नाद्या उन शब्दों को नहीं सुन पाएगी। उससे वे शब्द कहने वाला भी अब कोई नहीं है — हवा खामोश हो गई है और मैं यह शहर छोड़कर पितेरबुर्ग जाने वाला हूँ — हो सकता है कि मैं हमेशा के लिए वहाँ चला जाऊँगा।

मेरे पितेरबुर्ग रवाना होने से शायद दो दिन पहले की बात है। संध्या समय मैं बगीचे में बैठा था। जिस मकान में नाद्या रहती है, यह बगीचा उससे जुड़ा हुआ था और एक ऊँची बाड़ ही नाद्या के मकान को उस बगीचे से अलग करती थी। अभी भी मौसम में काफी ठंड है, कहीं-कहीं बर्फ पड़ी दिखाई देती है, हरियाली अभी नहीं है लेकिन बसन्त की सुगन्ध महसूस होने लगी है। शाम को पक्षियों की चहचहाट सुनाई देने लगी है। मैं बाड़ के पास आ जाता हूँ और एक दरार में से नाद्या के घर की तरफ देखता हूँ। नाद्या बरामदे में खड़ी है और उदास नज़रों से आसमान की ओर ताक रही है। बसन्ती हवा उसके उदास फीके चेहरे को सहला रही है। यह हवा उसे उस हवा की याद दिलाती है जो तब पहाड़ी पर गरजा करती थी जब उसने वे शब्द सुने थे। उसका चेहरा और उदास हो जाता है, गाल पर आँसू ढुलकने लगते हैं... और बेचारी लड़की अपने हाथ इस तरह से आगे बढ़ाती है मानो वह उस हवा से यह प्रार्थना कर रही हो कि वह एक बार फिर से उसके लिए वे शब्द दोहराए। और जब हवा का एक झोंका आता है तो मैं फिर धीमी आवाज़ में कहता हूँ - मैं तुम से प्यार करता हूँ, नाद्या!

अचानक न जाने नाद्या को क्या हुआ! वह चौंककर मुस्कराने लगती है और हवा की ओर हाथ बढ़ाती है। वह बेहद खुश है, बेहद सुखी, बेहद सुन्दर। और मैं अपना सामान बाँधने के लिए घर लौट आता हूँ...।

यह बहुत पहले की बात है। अब नाद्या की शादी हो चुकी है। उसने खुद शादी का फैसला किया या नहीं, इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता। उसका पति एक बड़ा अफसर है और उनके तीन बच्चे हैं। वह उस समय को आज भी नहीं भूल पाई है, जब हम फिसलने के लिए पहाड़ी पर जाया करते थे। हवा के वे शब्द उसे आज भी याद हैं, यह उसके जीवन की सबसे सुखद, हृदयस्पर्शी और खूबसूरत याद है।

और अब, जब मैं प्रौढ़ हो चुका हूँ, मैं यह नहीं समझ पाता हूँ कि मैंने उससे वे शब्द क्यों कहे थे, किसलिए मैंने उसके साथ ऐसा मज़ाक किया था!...

कमजोर

मूल लेखक– चेखव
मूल रूसी भाषा से अनुवाद – अनिल जनविजय

हाल ही में मैंने अपने बच्चों की अध्यापिका यूलिया वसिल्येव्ना को अपने दफ़्तर में बुलाया। मुझे उनसे उनके वेतन का हिसाब-किताब करना था।

मैंने उनसे कहा - आइए...आइए...बैठिए। ज़रा हिसाब कर लें। आपको पैसों की ज़रूरत होगी। पर आप इतनी संकोची हैं कि ज़रूरत होने पर भी आप खुद पैसे नहीं माँगेंगी। खैर...। हमने तय किया था कि हर महीने आपको तीस रूबल दिए जाएँगे।

— चालीस...।

— नहीं...नहीं... तीस। तीस ही तय हुए थे। मेरे पास लिखा हुआ है। वैसे भी मैं हमेशा अध्यापकों को तीस रूबल ही देता हूँ। आपको हमारे यहाँ काम करते हुए दो महीने हो चुके हैं...।

— दो महीने और पाँच दिन हुए हैं।

— नहीं, दो महीने से ज्यादा नहीं। बस, दो ही महीने हुए हैं। यह भी मैंने नोट कर रखा है। तो इस तरह मुझे आपको कुल साठ रूबल देने हैं। लेकिन इन दो महीनों में कुल नौ इतवार पड़े हैं। आप इतवार को तो कोल्या को पढ़ाती

नहीं हैं, सिर्फ थोड़ी देर उसके साथ घूमती हैं... इसके अलावा तीन छुट्टियाँ त्यौहार की भी पड़ी हैं...।

यूलिया वसिल्येव्ना का चेहरा आक्रोश से लाल हो उठा था। लेकिन उन्होंने कुछ नहीं कहा और अपने घाघरे की सलवटें ठीक करती रहीं।

— तीन त्यौहार की छुट्टियों को मिलाकर बारह दिन हुए। इसका मतलब आपकी तनख़्वाह में से बारह रूबल कम हो गए। चार दिन कोल्या बीमार रहा और आपने उसे नहीं पढ़ाया। ... तीन दिन तक आपके दाँत में दर्द रहा। तब भी मेरी पत्नी ने आपको यह इज़ाजत दे दी थी कि आप उसे दोपहर में न पढ़ाया करें। इसके हुए सात रूबल। तो बारह और सात मिलाकर हुए कुल उन्नीस रूबल। अगर साठ रुबल में से उन्नीस रूबल निकाल दिए जाएँ तो आपके बचे कुल इकतालीस रूबल। क्यों... मेरी बात ठीक है न...?

यूलिया वसिल्येव्ना की दोनों आँखों के कोरों पर आँसू चमकने लगे थे। उनका चेहरा काँपने लगा था। घबराहट में उन्हें खाँसी आ गई और वे रुमाल से अपनी नाक साफ करने लगीं। पर उन्होंने कोई आपत्ति नहीं की।

— नए साल के समारोह में आपने एक कप-प्लेट भी तोड़ दिया था। दो रूबल उनके भी जोड़िए। प्याला तो बहुत ही महँगा था। बाप-दादा के जमाने का था। लेकिन, चलिए... छोड़ देता हूँ। आखिर नुकसान तो हो ही जाता है। बहुत-कुछ गँवाया है...एक प्याला और सही। आगे... आपकी लापरवाही के कारण कोल्या पेड़ पर चढ़ गया था और उसने अपनी जैकेट फाड़ ली थी। दस रूबल उसके। फिर आपकी लापरवाही के कारण ही नौकरानी वार्या के जूते लेकर भाग गई। आपको सब चीज़ों का ख़्याल रखना चाहिए। आखिर आपको इसी काम के लिए रखा गया है। जूतों के भी पाँच रूबल लगाइए... और दस जनवरी को आपने मुझसे दस रूबल उधार लिए थे...।

— नहीं, मैंने आपसे कुछ नहीं लिया। यूलिया वसिल्येव्ना ने फुसफुसा कर कहा।

— लेकिन मैंने यह नोट कर रखा है।

— चलिए...चलिए... ठीक है। कुल सत्ताईस रूबल हुए।

— इकतालिस में से सताईस घटाइए। बाकी बचे चौदह।

— उनकी दोनों आँखें आँसुओं से भर गई थीं। उनकी सुन्दर और लम्बी नाक पर पसीने की बूँदें झलकने लगी थीं। बेचारी लड़की !

— मैंने सिर्फ एक ही बार पैसे लिए थे - उन्होंने काँपती हुई आवाज़ में कहा - आपकी पत्नी से मैंने तीन रूबल लिए थे। इसके अलावा कभी कुछ नहीं लिया...।

— अच्छा? अरे, यह तो मेरे पास लिखा हुआ ही नहीं है। तो चौदह में से तीन और घटा दीजिए। बाकी बचे ग्यारह। ...लीजिए, ये रहे आपके पैसे। तीन...तीन...तीन.. एक... और एक... उठा लीजिए।

और मैंने उन्हें ग्यारह रूबल दे दिए। उन्होंने चुपचाप पैसे ले लिए और काँपते हुए हाथों से उनको अपनी जेब में रख लिया।

— धन्यवाद। उन्होंने राँसीसी भाषा में फुसफुसाकर कहा।

मैं झटके से उठ खड़ा हुआ और कमरे में चक्कर काटने लगा। मुझे गुस्सा आ गया था।

— किसलिए धन्यवाद? मैंने पूछा।

— पैसों के लिए धन्यवाद।

— पर मैंने तो आपको लूट लिया है। बेड़ा गर्क हो मेरा ! किसलिए धन्यवाद?

— दूसरी जगहों पर तो मुझे यह भी नहीं दिया जाता था।

— नहीं दिया जाता था? तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है? मैंने तो आपसे मज़ाक किया है। मैंने आपको एक क्रूर सबक सिखाया है। मैं आपका एक-एक पैसा दे दूँगा। ये देखिए, यह लिफाफे में आपकी पूरी तनख़्वाह रखी हुई है। आप गलत बात का विरोध क्यों नहीं करतीं। आप चुप कैसे रह जाती हैं? क्या इस दुनिया में कोई इतना बेचारा और असहाय भी हो सकता है? क्या आपकी इच्छाशक्ति इतनी कमजोर है? क्या यह सम्भव है?

वह उदासी से मुस्कराई और मैंने उसके चेहरे पर पढ़ा

— हाँ, यह सम्भव है।

मैंने अपने क्रूर व्यवहार के लिए उससे माँफी माँगी और उसे दो महीने की पूरी तनख़्वाह के अस्सी रूबल दे दिए। वह आश्चर्यचकित हो उठी और बेहद संकोच के साथ मेरा आभार प्रकट करने लगी। फिर वो कमरे से बाहर चली गई और मैं सोचने लगा कि इस दुनिया में ताकतवर बनना बहुत आसान बात है!

पुस्तक–समीक्षा

एक रंगारंग कोलाज : 'अक्षयवट'

डॉ. नगमा जावेद मलिक

'नासिरा शर्मा कृत अक्षयवट उपन्यास : एक मूल्यांकन' डॉ. शगुफ़्ता नियाज़ द्वारा सम्पादित पुस्तक निस्संदेह एक भरी-पूरी कायनात है जिसमें इलाहाबाद शहर का हर रंग, हर झरोखा, हर गली, हर कूचा, हर सियाह, हर सफेद, हर अँधेरा, हर उजाला, हर पर्व, हर त्यौहार, हर मौसम अपनी तमाम सच्चाइयों के साथ हमारे रू-ब-रू खड़ा है। नासिरा शर्मा स्वयं इलाहाबाद की हैं इसलिए इस शहर के प्रति एक कुदरती लगाव उनके भीतर साँस लेता है। लेकिन उन्हें गहरा दुःख इस बात को लेकर है कि वह शहर जो कभी इल्मो-अदब का मरकज था, जिसे 'ऑक्सफोर्ड ऑफ द ईस्ट' कहा जाता था आज दागदार हो गया है। बेआबरू हो गया है। आज़ाद भारत के तीन प्रधान मंत्रियों को भी इसी शहर में जन्म लेने का गौरव प्राप्त है। सिर्फ इतना ही नहीं अनेक महान् साहित्यकारों और अध्यापकों ने भी इस धरती को अपने ज्ञान और प्रतिभा से सींचा है।

....अब इलाहाबाद एक मुर्दा शहर में तब्दील हो रहा है। यह अपराधियों का शरण-स्थल है। अपराधी और अपराध राजनीतिक छत्रछाया में फल-फूल रहे हैं। यूनिवर्सिटी के क्लासों से अध्यापक गैर हाजिर रहते हैं और कोचिनों में उनकी उपस्थिति दर्ज होती है। यानि डबल आमदनी! विद्या मन्दिर भी स्वार्थी मानसिकता के कारण कलुषित हो गये हैं। पुलिस के संरक्षण में हर वह काम होता है जो कानूनन जुर्म है।

इस उपन्यास का नाम 'अक्षयवट' यानी बरगद का पेड़ है जो इलाहाबाद विश्वविद्यालय का लोगों है। अपनी लम्बी-लम्बी जटाओं में पेड़ को सहेजते हुए। लेखिका इसके शानदार अतीत को पूरी निष्ठा से प्रस्तुत करती हैं। इस तारीखी शहर के इतिहास की हर धड़कन भी इसमें मौजूद है और पूरा का पूरा भूगोल भी झांक रहा है। लेखिका की जीवंत कलम ने बागों के शहर इलाहाबाद को पन्ने-पन्ने पर साकार कर दिया है। शहर का गुमशुदा स्वर्ण माजी (अतीत) और गलीज, मैला और शर्मिंदा करने वाला वर्तमान... तस्वीर के दोनों रुख दिखाने की कोशिश की है नासिरा शर्मा ने। जहाँ अच्छे कामों के लिए कभी सम्पत्ति दान करने का रिवाज था, वहाँ कब्जे की संस्कृति फल-फूल रही है। जीवन-मूल्यों, समाज-मूल्यों में यहाँ भारी गिरावट आयी है। इलाहाबाद के माध्यम से लगभग भारत के सारे शहरों को आईना दिखलाया है लेखिका ने। जहीर को गर्व है कि यह उसका पुश्तैनी शहर है। सुरेन्द्र को अपने शहर के छूट जाने का दुःख है तो जहीर को उसके लगातार खोते दायित्वपूर्ण लेखिका के दर्द की अनुगूंज इसमें मौजूद है जो समाज और देश में व्याप्त भ्रष्टाचार को देख रही है और वह यह भी मानकर चल रही हैं कि व्यवस्था को बदलने के लिए, इंसानियत के दुश्मनों को सबक सिखलाने के लिए ईमानदार और समर्पित लोगों को आगे आना होगा। वर्तमान परिवेश और व्यवस्था में बदलाव लाने के लिए साहित्य ने हमेशा महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

इस सम्पादित पुस्तक में उन्नीस विद्वानों के लेख हैं । हर लेख उपन्यास की एक नयी जमीन तोड़ता है। समीक्षकों ने अलग-अलग दृष्टियों से 'अक्षयवट' का मूल्यांकन किया है। मधुरेश का समीक्षात्मक लेख संक्षिप्त भी है और दिलचस्प भी। निष्पक्ष होकर उन्होंने उपन्यास की खूबियाँ और खामियों को रेखांकित किया है। 'अक्षयवट : खोये और छूटे शहर की दास्तान' में वे कहते हैं कि 'नासिरा शर्मा भी इस खोये और छूटे शहर की पुनर्रचना को ही अपना लक्ष्य बना कर चली हैं। एक मरते हुए या मुर्दा शहर के रूप में उसका तसव्वुर उनके लिए मुश्किल है। वे भी मानती हैं कि अपने रूप और फैलाव में वह बरगद के बेहद मोटे और चौड़े तने वाले पेड़ की तरह है, जिसे अपने दोनों बाजुओं में घेरने के बाद भी उसका बहुत कुछ छूटा और बचा रहता है। शायद इस छूटने और बचा रहने के कारण ही वह 'अक्षयवट' है।'

'इंसानी फ़िक्रों का महाकाव्य : अक्षयवट' अवध बिहारी पाठक आलोचनात्मक लेख में लिखते हैं ... 'कुल मिलाकर कहने दिया जाए तो कहूँगा कि पांच सौ पृष्ठों की रचना में लेखिका ने व्यर्थ ही समय जाया नहीं किया। अक्षयवट के जरिए अकेला इलाहाबाद ही नहीं व्याख्यित हुआ, बल्कि इलाहाबाद के सहारे हिन्दुस्तानी शहरों की दर्दीली कहानी कही

गई है। समाज, देश, धर्म, व्यक्ति, सियासत, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय सारी इंसानी फ़िक्रों का समुच्चय है यह उपन्यास। कहना चाहिए कि यह रचना उपन्यास की परिधि में एक सशक्त समाज का शास्त्रीय अध्ययन है, जो लेखिका की गहन संवेदी निगाह का सूचक है। 'अक्षयवट : बदलाव का दस्तावेज' में श्यामकृष्ण पाण्डेय कहते हैं- 'अक्षयवट के माध्यम से नासिरा ने यह निष्कर्ष निकाला है कि राज-पाट कई बार बदला, सत्ता के दल बदले, शासन के चेहरे बदले, पर देश की व्यवस्था नहीं बदली। अपने नौजवान पात्रों को सामने रखकर उन्होंने देश के युवाजनों से अपेक्षा की है कि वे सामने आयें और इस यथास्थितिवाद को जड़ से उखाड़कर एक नये समाज की संरचना करें।' पाण्डेय जी का कहना है कि- 'इलाहाबाद को उसकी पूरी समग्रता में देखने, जानने और समझने के लिए 'अक्षयवट' एक महत्त्वपूर्ण आधार ग्रन्थ के रूप में स्वीकार किया जाएगा, यह मेरा निःसंकोच मानना है।'

'इन्स्पेक्टर त्रिपाठी बनाम इबलीस' डॉ. शगुफ़्ता नियाज़ ने बड़ी बारीकी से उपन्यास में चित्रित त्रिपाठी के चरित्र का सभी पहलुओं का विश्लेषण सप्रमाण किया है। यह विवेचन उनकी गहरी पकड़ और सूक्ष्म दृष्टि का परिचायक है 'लेखिका की सूझ-बूझ की दाद देनी पड़ेगी कि वह इस बात को लाकर शायद समाज को यही बताना चाहती हैं कि अब त्रिपाठी के बच्चे की परवरिश जहीर सिपुतन करेंगे। शैलेन्द्र चौहान की समीक्षा 'इलाहाबाद के भीतर एक और इलाहाबाद की तलाश' में लेखक का कहना है कि यह उपन्यास एक ऐसा औसत सामाजिक उपन्यास है, जो नैतिक एवं आदर्श सामाजिक संरचना के निर्माण की अपेक्षा की ओर इंगित करता है, शायद यही इसका अभीष्ट भी है।'

'इलाहाबाद का दर्द 'अक्षयवट' का पाठकनामा' में ज्ञानेंद्र अग्रवाल का कहना है कि यह झकझोड़ता है और विवश कर देता है यह मानने के लिए कि यह उपन्यास उनकी सर्वश्रेष्ठ कृति है और हिंदी के कुछ एक गिने-चुने उपन्यासों में भी अपनी विशेष पहचान रखता है। भानु चौहान का कहना है कि 'अक्षयवट' उपन्यास में स्वर्णिम अतीत, कटु यथार्थ व आदर्श का अद्भुत संगम है, जिसकी आज पूरे परिवेश को सख्त आवश्यकता है। पूरे विश्व को मानवीय मूल्यों से जोड़ने की दिशा में नासिरा का यह उपन्यास बेहद कारगर प्रयास है। 'गंगा-जमुनी तहजीब का जीवंत दस्तावेज : अक्षयवट' में समीक्षक युसुफ अली कहते हैं कि अक्षयवट का कथ्य और शिल्प वास्तव में अक्षयवट ही है, जिसमें इलाहाबाद की गंगा-जमुनी तहजीब ही नहीं बल्कि हिन्दुस्तान की गंगा-जमुनी तहजीब नज़र आने लगती है। ....वास्तव में अक्षयवट गंगा-जमुनी तहजीब का जीवंत दस्तावेज है।' जाहिदा ज़बी 'इलाहाबादी संस्कृति का दस्तावेज 'अक्षयवट' में लिखा है 'अक्षयवट भारतीय वनस्पति में सब से विराट वृक्ष माना जाता है, जो बूढ़ी परम्परा, प्राचीन विरासत, घनी जटाओं और बड़ी उम्र का प्रतीक है, बिल्कुल वैसे ही जैसे इलाहाबाद अपनी प्राचीन, गौरवशाली परम्परा के लिए जाता है, किन्तु उसके वर्तमान पर अपराध, आतंकवाद और भ्रष्टाचार की नज़र है।' किरण श्रीवास्तव का विचार है कि 'उनके लेखन का उद्देश्य विसंगतियों पर चोट करते हुए समाज में सौहार्द एवं भाईचारे की भावना को उत्कर्ष तक पहुंचाकर मानवता की स्थापना करना है। इनके शब्दों का जादू संवेदना में ढलकर 'अक्षयवट' को मर्मस्पर्शी और कालजयी बना देता है।'

डॉ. इफ्फत असगर 'अक्षयवट : मूल्यांकन की एक दिशा' में लिखती हैं कि 'अक्षयवट का सम्यक् विवेचन करते हुए यह निष्कर्ष सहज ही निकाला जा सकता है कि विगत् दस वर्षों में हिंदी में जितने भी उपन्यास लिखे गये, उनमें अक्षयवट की पहचान निश्चय ही एक श्रेष्ठ उपन्यास के रूप की जानी चाहिए।' तेरी याद आती है .... डॉ. राजेश शर्मा का कहना है कि उत्सवों की छांव में शहर को देखती हुई नासिरा इलाहाबाद को उसी तरह धड़कते देखना चाहती हैं जैसे कोई डॉक्टर किसी मरते हुए आदमी के दिल पर अपना हाथ रखकर दबाता है। 'सीमा शफक' का लेख 'ताऊस बोलता हो तो जंगल हरा भी हो' में पत्र-शैली में उपन्यास की विशेषताओं का विवेचन करते हुए भावुकता का दरिया उमड़ पड़ा है लेकिन बुद्धि को साथ लेकर। उनका कहना है कि 'मैं इंकार करती हूँ इससे, कि मैं इसे इलाहाबाद तक महदूद न करके हमारे मुल्क ही नहीं तमाम मुल्कों में जो घट रहा है, के नुक्तए-नज़र से देखूंगी कि 'अक्षयवट' दृष्टि के ऐसे ही फैलाव की मांग करता है।'

'भारतीय संस्कृति का कथात्मक जीवंत अभिलेख : अक्षयवट' डॉ. आदित्य प्रचंडिया का कहना है कि नासिरा शर्मा ने व्यक्ति और समाज की विकृति की हर सिलवट को बारीकी से अपने उपन्यास में उकेरा है।' रंजीत शर्मा ने 'इस बहरे समय में' लिखते हैं कि 'अक्षयवट' मन-मस्तिष्क पर रंगों और लकीरों में उभरती आकृतियों से सजे एक ऐसे विशाल कैनवास की तरह उभरता है, जो बरबस आपके अनुभव का हिस्सा हो जाता है। 'स्मृतियों का संगम' में साधना अग्रवाल का कहना है कि इसमें शहर की धड़कन में रची-बसी ऐसी युवा ज़िंदगियों की मर्मस्पर्शी कहानी है, जो विरासत में मिली तमाम उपलब्धियों के बावजूद वर्तमान व्यवस्था की सड़ांध और आपा-धापी में अवसाद भरी ज़िन्दगी

जीने के लिए अभिशप्त हैं।' 'एक तिरे प्यार का गम, एक बहाना...' के माध्यम से प्रेम शशांक ने इस तथ्य को उजागर किया है कि इलाहाबाद अक्षयवट नहीं है बल्कि कथानायक जहीर है।'

शिवजी श्रीवास्तव 'एक शहर के बहाने' में कहते हैं कि सारा उपन्यास आदर्श के महीन तन्तुओं से निर्मित है। वीभत्स यथार्थ की समस्त विद्रूपताएँ आदर्श की चादर से ढक दी गयी हैं। यदि अक्षयवट को कथाकार के आदर्शों का स्वप्न कहा जाए तो गलत न होगा।' क्षितिज शर्मा के लेख 'आदर्श की अभिव्यक्ति का एक सार्थक प्रयास' में जहीर और उसके जुझारू साथी रमेश, बसंत आदि अच्छाई और संघर्ष का प्रतीक बन जाते हैं, तो इंस्पेक्टर त्रिपाठी बुराई का चरम बन जाता है।' इस पुस्तक में आसिफ खान ने 'अक्षयवट' को लेकर एक इंटरव्यू भी लिया है भाषा के सम्बन्ध में पूछे गये सवाल के जवाब में नासिरा शर्मा का कहना है .... ' मेरी भाषा शैली वही है जो मैंने दो भाषाओं के सुंदर शब्दों से सजाई है, मगर जहाँ पात्र बोलता वहाँ ज़रूर इलाहाबादी बोली ली है। उस बोली का मज़ा लिखित से ज़्यादा उसके लहजे और शब्दों क उच्चारण में है, इसलिए सुनने में बड़ा मज़ा देती है।'

कुल मिलाकर शगुफ़्ता नियाज़ की यह सम्पादित कृति शोध कर्ताओं और साहित्य के जिज्ञासुओं और समाजशास्त्रियों के लिए निहायत अहम् है। इसमें 'अक्षयवट' के सारे पहलुओं पर सविस्तार प्रकाश डाला गया है। हर लेख एक अलग विजन से पूरी निस्संगता से उपन्यास की जाँच-पड़ताल करता है। सभी लेखों का निचोड़ यह है कि कुछ कमियों के होते हुए भी यह कृति उपन्यास की शाहराह पर मील का एक पत्थर साबित होगी। वर्तमान नारीवादी दृष्टि के सीमित दायरे को तोड़ते हुए इसमें वह सभी कुछ है जो आज का कसैला यथार्थ है और इस कालिख में हाथ डाले बिना समाज उज्ज्वल भविष्य का सपना देख ही नहीं सकता। नासिरा शर्मा जैसी लेखिका और चिंतक तमाशबीन की खामोश रह भी कैसे सकती हैं?

'नासिरा शर्मा कृत अक्षयवट उपन्यास : एक मूल्यांकन' डॉ. शगुफ़्ता नियाज़
वाङ्मय बुक्स, 205 ओहद रेजीडेंसी, दोदपुर रोड, अलीगढ़-202002, मूल्य- 280/

पुस्तक–समीक्षा

मार्कण्डेय का साहित्य : समग्र मूल्यांकन

डॉ. नगमा जावेद मलिक

डॉ. नीलांबिके एस्. पाटील की पुस्तक 'मार्कण्डेय का साहित्य : समग्र मूल्यांकन' पढ़कर सुखद आश्चर्य हुआ कि कर्नाटक में भी हिन्दी को लेकर इतना अच्छा काम हो सकता है। लेखिका ने मार्कण्डेय के साहित्य को लेकर मौलिक चिन्तन किया है। लेखिका ने नयी कहानी के दिग्गज कथाकारों में मोहन राकेश, कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, शिवप्रसाद सिंह, फणीश्वरनाथ रेणु, भीष्म साहनी, उषा प्रियंवदा, मन्नू भंडारी, कृष्णा सोबती का विशेष परिचय दिया है। साथ ही उन्होंने अमरकान्त, निर्मल वर्मा, हरिशंकर परसाई, शेखर जोशी का भी उल्लेख किया है।

उनका कहना है कि नयी कहानी के कर्णधारों में मार्कण्डेय का शीर्ष स्थान है। आगे वह लिखती हैं कि नयी कहानी के कहानीकरों में कमलेश्वर ने अपनी कहानियों में व्यक्तिवादिता, सामाजिकता तथा प्रगतिशीलता का चित्रण किया है तो मोहन राकेश ने अपनी कहानियों में व्यक्ति के अंतर्मन को उजागर करने का प्रयास किया है। राजेन्द्र यादव ने अपनी कहानियों में मानवीय सम्बन्धों का यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है तो निर्मल वर्मा ने इन सम्बन्धों को नये रूप में प्रस्तुत किया है। धर्मवीर भारती की कहानियों में भोगी हुई आधुनिकता का निखरा हुआ रूप सामने आया तो अमरकांत की कहानियों में आस्था और दृढ़ संकल्पों वाली स्वस्थ जीवन दृष्टि सामने आयी। तो मन्नू भंडारी ने अपनी विभिन्न कहानियों के माध्यम से जीवन के विभिन्न पहलुओं को प्रस्तुत किया तो रेणु ने आंचलिक सुगंध से पाठकों का परिचय

कराया। भीष्म साहनी ने अपनी कहानियों में छोटी-छोटी संवेदनाओं को उभारा तो उषा प्रियंवदा ने देशी-विदेशी परिवेश में स्त्री-पुरुष सम्बन्धों को अपनी कहानियों का कथ्य बनाया। कृष्णा सोबती के नारी-चित्रण में रोमांटिकता और यथार्थ का अद्‌भुत मिश्रण देखा जा सकता है।

'मार्कण्डेय का जीवन और कृतित्व' में लेखिका ने उनके जीवन की संक्षिप्त झांकी प्रस्तुत की है। मार्कण्डेय का व्यक्तित्व बहुत सरल, मृदु-स्वभाव तथा अत्यंत स्नेहमयी है। वे ईमानदार एवं अनुशासनबद्ध व्यक्ति हैं। हालांकि उन्होंने उपन्यास भी लिखे हैं लेकिन कहानीकार के रूप में वह अधिक प्रतिष्ठित हैं। साहित्य की अन्य विधाओं में भी उनका योगदान कम नहीं है। आलोचक के रूप में भी उनका एक अलग स्थान है। उनकी पहली कहानी 'गुलरा के बाबा' 'कल्पना' में प्रकाशित हुई और बहुत सराही गयी। चक्रधर के छद्‌म नाम से वे शुरू में आलोचना करते रहे। उनकी कहानियों की चौहद्दी ग्रामीण जीवन है। उन्होंने सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक जीवन के विविध सन्दर्भ को बड़े ही जीवंत रूप में प्रस्तुत किया है। देश की लगभग सभी भाषाओं के अतिरिक्त अंग्रेज़ी, रूसी, जर्मनी, रांसीसी भाषाओं में उनकी अनेक कहानियों का अनुवाद हुआ है।

'मार्कण्डेय का कहानी साहित्य' में लेखिका ने मार्कण्डेय के सात कहानी-संग्रहों की सभी कहानियों को विश्लेषित किया है। वे मूलतः ग्रामीण संवेदना के कथाकार हैं। उनकी कहानियों में विषय वैविध्य है। मानवतावादी दृष्टिकोण भी उनकी कहानियों में मुखरित हुआ है। उनके पात्र विविध वर्गों के हैं। लेखिका का कहना है कि बीसवीं सदी का साधारण भारतीय जीवन, जो बुनियादी रूप से किसानों-मजदूरों या इनके घरों से आये लोगों का जीवन है, प्रेमचंद के कथा-साहित्य के बाद मार्कण्डेय की कहानियों में बहुत सशक्त कलात्मक अभिव्यक्ति पाता है। मार्कण्डेय की कहानियों परिवेशगत यथार्थ बड़े तपाक से प्रस्तुत हुआ है। आज़ादी के बाद देश में फैले राजनीतिक भ्रष्टाचार को उन्होंने अपनी कई कहानियों में रेखांकित किया है। उन्होंने मानवीय मूल्यों की महत्ता को रेखांकित किया है। कर्मठता, ईमानदारी को वे बहुत महत्त्व देते हैं। उनकी कहानियों में सामाजिक चेतना, संघर्ष, दरिद्रता, यौन समस्याएँ, नारी-जीवन के विविध पहलू, प्रेम-सम्बन्ध, शोषण, धार्मिक पाखण्डता आदि अनेक समस्याओं को दर्शाया गया है। शिल्प की दृष्टि से इन कहानियों में काव्यात्मकता, संगीतात्मकता, प्रतीकात्मकता और सांकेतिकता के गुण विद्यमान हैं। व्यंग्य के माध्यम से भी वे अपनी बात कहते हैं।

'मार्कण्डेय का उपन्यास साहित्य' के अंतर्गत लेखिका ने 'सेमल के फूल' और 'अग्निबीज' का बहुत विस्तार से विवेचन-विश्लेषण किया गया है। इसमें उपन्यास में चित्रित सभी समस्याओं को उठाया गया है। उनका कहना है कि मार्कण्डेय ने अपने उपन्यास के माध्यम से भारत की सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक विषमताओं-विसंगतियों को चित्रित करके आधुनिक मानव के लिए एक आदर्श प्रदान किया है।

मार्कण्डेय का अन्य साहित्य अध्याय के अंतर्गत डॉ. नीलांबिके ने मार्कण्डेय के अन्य विधाओं में योगदान की चर्चा की है। 'सपने तुम्हारे थे' कविता संकलन में अलग-अलग रंगों की कविताएँ हैं। इनमें प्रेम के रंग हैं, स्मृतियाँ हैं, वामपंथी विचारधारा है, दर्शन है, शोषित व्यक्ति की व्यथा है, जीवन की धूप-छांव है। 'पत्थर और परछाइयाँ' में छह एकांकी संकलित हैं। सभी एकांकी अलग-अलग विषयों से सम्बन्धित हैं। ग्रामीण और शहरी जीवन से सम्बंधित परिवेश की बेहद जीवंत अक्कासी इनमें हुई है।

'कहानी की बात', में मार्कण्डेय ने अपनी पीढ़ी के एक-एक कहानीकार की कहानियों का विवेचन बड़ी निर्ममता और सहानुभूति के साथ किया है। उन्होंने निर्मल वर्मा, शेखर जोशी, अमरकांत, राजेन्द्र यादव, कृष्णा सोबती, रामकुमार, मोहन राकेश, भीष्म साहनी, भैरवप्रसाद गुप्त, अश्क, यशपाल, अज्ञेय, पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र आदि की कहानियों की समीक्षा की है। उनकी समीक्षा दृष्टि प्रगतिशील है। वे कहानियों की समीक्षा जीवन और समाज के वास्तविक सन्दर्भों में करने के पक्षधर हैं। 'कहानी की बात' समीक्षात्मक निबंध संग्रह है। एक ओर वे नये कहानीकारों से युगीन परिवर्तन की पहचान को आवश्यक मानते हैं। दूसरे काल्पनिक, आदर्शवादी और रोमानी चित्रण के मोह से उबरने का आग्रह करते हैं।

'भाषा-शैली' में लेखिका ने मार्कण्डेय की भाषा-शैलीगत विशेषताओं का आकलन किया है। कथा साहित्य में भाषा केवल पात्रों की ही नहीं होती, परिवेश की भी होती है। उनकी भाषा पात्रों के अनुरूप, कथ्य के अनुरूप और परिवेश के अनुरूप लगातार बदलती है। उपमा, रूपक, गँवई उपमान, उत्प्रेक्षा का यथा स्थान प्रयोग भाषा को सशक्त बनता है। उन्होंने हिंदी के अतिरिक्त संस्कृत, उर्दू, अंग्रेज़ी, भोजपुरी शब्दों का भी प्रयोग किया है। बिम्ब और प्रतीक उनकी भाषा को प्रभावशाली और काव्यमयी बनाते हैं। मुहावरों, कहावतों और लोकोक्तियों ने भी भाषा को समृद्ध किया है। गालियों का प्रयोग परिवेश और पात्रों के अनुकूल है। वाचक चिह्नों ने भी पात्रों की मनःस्थिति को उकेरने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई

है। कहीं आत्मकथात्मक, कहीं वर्णनात्मक, कहीं पूर्वदीप्ति, कहीं चेतन प्रवाह, कहीं संवादात्मक, कहीं पत्रात्मक, कहीं गीतात्मक, कहीं ध्वन्यात्मक, कहीं व्यंग्यात्मक, कहीं डायरी शैली का प्रयोग उनकी भाषा सामर्थ्य को दर्शाता है।

लेखिका ने निष्कर्ष के तौर पर लिखा है कि मार्कण्डेय के कथा-साहित्य में मानव-जीवन की समस्त समस्याओं का समावेश हुआ है। मार्कण्डेय के कथा-साहित्य में स्वातंत्र्योत्तर ग्राम-जीवन की समस्त स्थितियों का विवेचन सम्यक् ढंग से किया है। अपनी अज्ञानता एवं मिथ्या विश्वासों के कारण गाँव राजनीतिक, आर्थिक एवं धार्मिक शोषण का शिकार बने हुए हैं । 'हंसा जाई अकेला' 'बुचऊ' आदि कहानियों में आज़ादी के बाद की मोह की स्थितियों का चित्रण है। 'साबुन' में बेरोजगार होती पीढ़ी और मध्यवर्गीय मानसिकता को दर्शाया गया है। लेखक की कहानियों में वैचारिक स्खलन नहीं है, विचार आरोपित नहीं हैं, उपदेश, वक्तव्य, भाषण और बयानबाजी नहीं है। लेखक के हृदय में सर्वहारा के प्रति अत्यधिक सहानुभूति है। बहुमुखी प्रतिभा के धनी मार्कण्डेय का साहित्य को योगदान अप्रतिम है। डॉ. निलांबिके की पुस्तक मार्कण्डेय को समग्रता में देखने का एक सार्थक प्रयास है।

समीक्ष्य पुस्तक- डॉ. नीलांबिके एस्. पाटील की पुस्तक 'मार्कण्डेय का साहित्य : समग्र मूल्यांकन'
वाड्.मय बुक्स, 205 ओहद रेजीडेंसी, दोदपुर रोड, अलीगढ़-202002, मूल्य- 600/

पुस्तक–समीक्षा

मुस्लिम विमर्श : साहित्य के आईने में

डॉ. नगमा जावेद मलिक

आज़ादी के बाद मुसलमानों ने जो कुछ झेला और जिया, वह एक तकलीफदेह दास्तान है। आज़ादी की जंग में हिन्दू-मुस्लिम कंधे से कंधा मिला कर लड़े थे। लेकिन आज़ादी ने उन्हें क्या दिया? बिखराव और टूटन। पाकिस्तान जाने वाले मुहाजिर कहलाए और भारत के मुसलमानों को आज भी शक की नज़र से देखा जाता है। दोनों ही मुल्कों में वह एक अभिशप्त जीवन जीने के लिए विवश हैं। यह कैसा इंसाफ है? आज़ादी के 68 साल बाद भी साम्प्रदायिक ताकतें ज़रा-सी बात उन्हें पाकिस्तान जाने के लिए कहती हैं।

मुझे यह कहने में कोई झिझक नहीं है कि गांधी जी के इस देश में आज भी उदार और निष्पक्ष लोग मौजूद हैं, जिनकी वजह से भारत में एकता और भाईचारे की एक अनदेखी सुगंध फैली हुई है। डॉ. एम. फ़ीरोज़ खान की पुस्तक 'मुस्लिम विमर्श : साहित्य के आईने में' एक स्तुत्य प्रयास है। इसमें लेखक ने बड़ी मेहनत से मुस्लिम समाज का भरपूर परिचय दिया है। भारत में इस्लाम का उदय, प्रचार-प्रसार कैसे हुआ? सारे मुस्लिम शासकों की पूरी तारीख कलमबंद की गयी है। मध्यकाल से लेकर आज तक के मुसलमानों के विभिन्न सम्प्रदायों, संस्कारों और त्यौहारों का भी इसमें विस्तृत ब्योरा दिया गया है। मुस्लिम सांस्कृतिक-सृजनात्मक पक्ष के अंतर्गत वास्तुकला, चित्रकला और संगीतकला के बारे में बहुत विस्तार से प्रकाश डाला गया है। हिंदी प्रदेशों में मुस्लिमों की स्थिति क्या है? मुस्लिमों में कितने वर्ग हैं? उनकी सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक स्थिति क्या थी और क्या है? रोजगार और नौकरियों की स्थिति पर भी प्रकाश डाला गया है। एक तरह से मुस्लिम समाज की जानकारी का एक प्रामाणिक स्रोत है यह पुस्तक। इस पुस्तक की एक महती विशेषता यह है कि लेखक ने उन सभी रचनाओं को लिया है जो मुस्लिम कथाकारों द्वारा लिखी गयी हैं और मुस्लिम समाज का प्रमाणिक दस्तावेज हैं। इसमें हिन्दी के मुस्लिम कथाकारों में नासिरा शर्मा, मेहरुन्निसा परवेज, राही मासूम रज़ा, शानी, अब्दुल बिस्मिल्लाह, बदीउज्ज़माँ, मंजूर एहतेशाम, असगर वजाहत को लिया है।

शानी के 'मुस्लिम समाज का प्रमाणिक दस्तावेज : काला जल' का विश्लेषण करते हुए डॉ. फ़ीरोज़ खान लिखते हैं- 'विभाजन के पश्चात् भारतवासी मन-मस्तिष्क दोनों में बट

गया, वह स्वयं अपनी दृष्टि में संशित होकर रह गया। विश्वास और अविश्वास के बीच झूलते रहने की उसकी पीड़ा बड़ी दुःखद थी। वह अपने ही सत्य से भाग रहा था।' एक और जगह वह लिखते हैं- वस्तुतः स्वाधीनता आन्दोलन के दौरान असंख्य हिन्दू-मुसलमानों ने मिलकर यह सपना देखा था कि उनका एक अपना साझी भावनाओं वाला लोकतंत्र होगा, जहाँ सभी सम्प्रदाय के लोग परस्पर एक दूसरे से जुड़े रहेंगे और एक दूसरे का सम्मान करेंगे, लेकिन इसी बीच अलगाववादी चेतना का विकास हुआ और पाकिस्तान का निर्माण हुआ। आज़ादी और बँटवारे के बाद भारत में रह गये मुसलमानों को दोहरी मार झेलनी पड़ी। उनको शक और नफ़रत के साथ देखा जाने लगा।' 'काला जल' में शानी ने सभी सच्चाइयों को प्रस्तुत किया है चाहे वह सामाजिक हों, आर्थिक हों, राजनीतिक हों, साम्प्रदायिक हों या सांस्कृतिक। डॉ. खान का कहना है कि 'काला जल' उपन्यास मुस्लिम जीवन और समाज का प्रामाणिक दस्तावेज है।

नासिरा शर्मा के 'ज़ीरो रोड' उपन्यास में साम्प्रदायिकता के नाखूनों से लहूलुहान इंसानियत का क्रंदन है। इलाहाबाद के मुस्लिम मोहल्ले चक की एक तंग गली में रहने वाले रामप्रसाद अपने आपको असुरक्षित महसूस करते हैं। इसी तरह हिन्दू मोहल्ले में मुसलमान अपने आपको असुरक्षित महसूस करते हैं। डॉ. खान का कहना है कि साम्प्रदायिक दंगे-फसाद से सभी का नुकसान होता है। सबसे ज़्यादा नुकसान आमजन का होता है क्योंकि जो लोग प्रतिदिन कमाते हैं और अपना परिवार पालते हैं। अगर ऐसे में एक दिन काम न करें तो खर्च कहाँ से चलेगा। उनका कहना है 'कि लाखों करोड़ों मुसलमानों को हिंदुस्तान से बाहर नहीं खदेड़ा जा सकता है कि आपसी मेल-जोल और सौहार्द्र बनाकर दोनों सम्प्रदायों के लोग प्यार-मुहब्बत के साथ रहें। उपन्यास का एक पात्र बरकत उस्मानी कहता है.... 'राजनीति से अधिक मानवता को तरजीह देने से ही साम्प्रदायिक-सौहार्द्र बन सकता है।'

नासिरा शर्मा का 'ज़िन्दा मुहावरे : एक अध्ययन' में विभाजन की त्रासदी को ही व्यंजित किया गया है। डॉ. खान का कहना है कि आज़ादी की सुबह खून के रंगों से सनी आई थी, उसकी चुनर अपनी ही संतानों के रक्त से अरूणिम हो गयी थी, लोगों की वेदना मिश्रित चीत्कार वातावरण को कम्पित कर रही थी सब कुछ हतप्रभ कर देने वाला था। इस उपन्यास में विभाजन की वजह से बरसों पुराने हिन्दू-मुस्लिम रिश्तों में आई दरारों, परिवारों की टूटन, अपनों से बिछुड़ने का दर्द, नयी जमीन में अजनबियत का अहसास, रोजी-रोटी का मसला, उजड़ने की पीड़ा आदि अनेक समस्याओं को नासिरा जी ने शब्दबद्ध किया है। डॉ. खान का कहना है - 'देश में फैली धर्म के नाम पर विभाजन की लहर ने लोगों में असुरक्षा एवं भय भर दिया। .... साम्प्रदायिक विवादों का कारण वे लोग हैं जो असंतोष एवं अशांति फैलाना चाहते हैं न आम हिन्दू उसके लिए उत्तरदायी है न आम मुस्लमान।'

'विभाजन और मुस्लिम उपन्यासकार' लेखक ने विभाजन की त्रासदी को अलग-अलग उपन्यासों में अलग-अलग पात्रों की प्रतिक्रिया और सोच के माध्यम से व्यक्त किया है। राही मासूम रज़ा का कहना है..... 'प्रेमपूर्वक रहने वाले भारतवासी एक झटके में केवल हिन्दू या मुसलमान बनकर रह गये थे।' नासिरा शर्मा कहती हैं - वह तजुर्बा कितना तकलीफदेह होता है कि जहाँ आप पैदा हुए हों, जिस जमीन को आप अपना वतन समझें, उसे बाकी लोग आपका गलत कब्जा बताएं और साथ ही यह प्रश्न किया जाए कि आप कहाँ रहना चाहते हैं।' बदीउज्जमाँ के उपन्यास 'छाको की वापसी' में छोटी अम्मा कहती हैं- 'हमें पाकिस्तान-वाकिस्तान नहीं जाना है। हम अपना घर-बार छोड़ कर परदेस क्यों जाएँ?' 'आधा गाँव' में राही कहते हैं कि नफरत और खौफ पर बनने वाली कोई चीज़ मुबारक नहीं हो सकती।'

विभाजन ने मानवीय मूल्यों में बहुत बदलाव किया है नयी पीढ़ी आत्मकेंद्रित है वह माँ-बाप के त्याग और बलिदान को नहीं समझती। 'छाको की वापसी' के अब्बा कहते हैं... 'तुम लोगों को क्या पता कितनी मुसीबतें झेल कर पढ़ा है। ट्यूशन कर करके पढ़ाई और खाने-पीने का खर्च निकाला है। अक्सर फीस के लिए पैसे नहीं होते थे।' 'काला जल' के फूफा कहते हैं- 'वह मर-मर कर कमाते हैं, सब सालों का पेट पालते हैं लेकिन कोई उनके जरा से खाने-पीने का ख़्याल नहीं रखता।' 'सात आसमान' (असगर वजाहत) का पात्र आर्थिक संघर्ष और जीवन में मिली असफलताओं से खीझकर कर कहता है कि-'अब्बा आपको हर वक्त पैसे की लगी रहती है। ये मेरा ही दिल जानता है कि जिस तरह खर्च पूरा कर रहा हूँ।' अब्दुल बिस्मिल्लाह के उपन्यास 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' में भी बुनकर की आर्थिक विवशता व्यक्त हुई है कि महंगी बनारसी साड़ी बुनने वाला अपनी माँ को एक सस्ती बनारसी साड़ी भी नहीं दे सकता। उन्हें सूती धोतियाँ पहननी पड़ती हैं । इस अध्याय में मुस्लिमों की आस्था, विश्वास, प्रेम, त्याग, भाईचारे, मेल-मिलाप के बारे में भी विचार व्यक्त किए गये हैं। लुब्बेलुबाब यह है कि भारतीय मुसलमान अनुभूति के स्तर पर विभाजन के जम्मेदार होने के बोझ को निरंतर ढोता हुआ असुरक्षा, अविश्वास और संशय से ग्रस्त है।

'हिंदी के मुस्लिम उपन्यासकारों का अध्ययन' में लेखक ने घर से जुड़ी रूढ़ियों और अंध विश्वासों को भी व्यक्त किया है। रोजे, धर्म, पर्दा, शिक्षा, अल्लाह, आत्मा की पवित्रता, नारी, मानवता, अन्धविश्वास, शोषण, आशा-निराशा, संघर्ष, द्वंद्व, असंतोष आदि जीवन के अनेक पहलुओं पर इसमें प्रकाश डाला गया है। इसमें मेहरुन्निसा परवेज का 'कोरजा', बदीउज्जमाँ का 'छाको की वापसी', नासिरा शर्मा के उपन्यास 'सात नदियाँ एक समुंदर', 'ज़िन्दा मुहावरे', राही मासूम रज़ा का 'आधा गाँव', 'टोपी शुक्ला', मंजूर ऐहतशाम का 'दास्तान-ए-लापता', 'सूखा बरगद', शानी का 'काला जल', अब्दुल बिस्मिल्लाह के 'समरशेष', 'झीनी-झीनी बीनी चदरिया' में मुस्लिम समाज के विभिन्न कोणों पर प्रकाश डालने के साथ ही आम मनुष्य, बुद्धिजीवी, राजनीतिज्ञ आदि के विचारों पर भी प्रकाश डाला गया है।

'बँटवारे का दस्तावेज : छाको की वापसी' की समीक्षा करते हुए लेखक ने लिखा है- 'बदीउज्जमाँ ने विभाजन भारत के मुसलमानों की मनोदशा का बड़े ही स्वाभाविक एवं सुन्दर ढंग से चित्रण किया है। जहाँ एक ओर अर्थ, यश एवं सुरक्षा के मोह को लेकर पाकिस्तान के प्रति आकर्षण मुसलमानों के मस्तिष्क में पल रहा था। वहीं दूसरी ओर देशप्रेम हृदय में हिलोरे ले रहा था।....कहीं अपनी जमीन से जुड़ा आकर्षण था तो कहीं पाकिस्तान से जुड़ा आकर्षण था, पाकिस्तान में हिंदूवादी नीति से बच पाने का विश्वास, प्रगति की आशा और सुखद भविष्य साँस ले रहा था।' बदीउज्जमाँ ने उपन्यास में इस सच्चाई को दर्शाया है कि गलत सोच वालों के कारण ही देश का बँटवारा हुआ। छोटी अम्मा को अपनी मातृभूमि एवं मिट्टी से इतना लगाव है कि वह किसी मूल्य पर इसे छोड़ना नहीं चाहतीं ..... 'ऐसी तरक्की किस काम की जिसमें आदमी को अपना देश और घर छोड़ना पड़े। जंगल में मोर नाचा किसने देखा। ना भाई ऐसे दो पैसे से घर का एक पैसा ही भला। भाड़ में ऐसी तरक्की।' इस लेख में समीक्षक ने उपन्यास में उठाए गये सवालों और समस्याओं को लिया है और बारीकी से विश्लेषित किया है।

'कोरजा : एक अध्ययन' में डॉ. खान ने स्पष्ट किया है कि इस कृति में मुस्लिम जीवन और समाज की विभिन्न समस्याओं और मजबूरियों का व्यापक चित्रण हुआ है। नसीमा के माध्यम से नारी की व्यथा कथा साकार हुई है। कहीं शिक्षा पर, कहीं शासन व्यवस्था पर और कहीं आदमी की संकीर्ण मानसिकता पर चुभते हुए व्यंग्य भी हैं। लेखिका ने प्रेम की अनुभूति को बहुत गहराई से समझने की कोशिश की है। .... 'आपा मोहब्बत कभी मरती तो नहीं, बल्कि उसकी खुशबू बाद में और तेज़ होकर आती है।' कभी-कभी प्यार बड़े विचित्र ढंग से सामने आता है तब बुद्धि काम नहीं करती, आदमी सोचने पर मजबूर हो जाता है, क्या ऐसा भी हो सकता है।' लेखिका ने मुस्लिम संस्कृति और त्योहारों का भी चित्रण किया है। ग्यारवीं शरीफ की धूमधाम मिलाद आदि का विस्तार से वर्णन किया है।

संक्षेप में 'मुस्लिम विमर्श : साहित्य के आईने में' लेखक फ़ीरोज़ खान ने उन सभी रचनाओं को इसमें शामिल किया है जो विशेष रूप से विभाजन से जुड़ी हुई हैं। लेखक का कहना है कि ''1947 में भारत आज़ाद हो गया, परन्तु अपने पीछे विषादों से भरा इतिहास भी छोड़ गया, उसकी छाती पर विभाजन की रेखा खिच गयी थी। आज़ाद हो जाने की खुशी, टुकड़ों में बंट जाने का गम सब ऐसा घुलमिल गया कि हर्ष का संगीत मरघट के सन्नाटों में खो गया।''

मुस्लिम लेखकों की रचनाओं पर किया गया यह चिंतन और विश्लेषण शोधार्थियों के लिए भी काफी सामग्री उपलब्ध कराता है। विभाजन के त्रासद कारणों पर भी इसमें प्रकाश डाला गया है। लेकिन इसकी सबसे बड़ी खूबी यह है कि रचनाओं के विश्लेषण से पहले इस्लाम धर्म का स्वरूप पेशकर के उसकी पृष्ठभूमि में रचनाओं और मुस्लिम संस्कृति को समझना और समझाना सरल व सहज हो जाता है।

समीक्ष्य पुस्तक- 'मुस्लिम विमर्श : साहित्य के आईने में', लेखक- डॉ. एम. फ़ीरोज़ खान
वाड्.मय प्रकाशन, 205 ओहद रेजीडेंसी, दोदपुर रोड, अलीगढ़-202002, मूल्य- 295/

जीवन के दुश्वार रास्तों से होकर ये प्रेम गुज़रता है

पंकज सुबीर

क़तरा-क़तरा ज़िंदगी मुकेश दुबे द्वारा लिखे गए पहले दो उपन्यासों में से एक है। यह उपन्यास कड़ी धूप का सफ़र नामक उपन्यास के साथ लिखा गया। उपन्यास रूमानी सामाजिक उपन्यासों की उस कड़ी में लिखा गया है जिसका चलन कुछ समय पहले बहुत आम था। इस प्रकार के उपन्यासों का एक अपना पाठक वर्ग था, है। उन पाठकों के लिए यह उपन्यास एक ताज़ा हवा के झोंके के समान है। सामाजिक ताने-बाने को रूमानी धागे का जोड़ लगाकर उपन्यास को मुकेश दुबे ने बहुत अच्छे तरीक़े से बुना है। प्रेम हर दौर में साहित्य का एक प्रमुख विषय रहा है और रहेगा। प्रेम की कहानियाँ, कविताएँ हर दौर में पढ़ी जाती रही हैं। जब तक जीवन में प्रेम है तब तक प्रेम की कहानियाँ भी रहेंगी। देश काल परिस्थितियों के अनुसार उनमें कुछ परिवर्तन हो सकता है। मुकेश दुबे का उपन्यास क़तरा-क़तरा ज़िंदगी प्रेम के साथ शुरू होता है फिर धीरे-धीरे जीवन के यथार्थ धरातल पर उतरता जाता है। जीवन के दुश्वार रास्तों से होकर ये प्रेम गुज़रता है। लेखक ने स्वयं स्वाथ्य संबंधी परेशानियों को भोगा है इसलिए उपन्यास में इन घटनाओं का वर्णन पूरी शिद्दत के साथ किया गया है। उपन्यास में छोटी-छोटी घटनाओं को बखूबी लेखक ने मूल कथा के साथ गूँथा है। इस प्रकार कि वो मूल कथा के प्रवाह में कहीं कोई अवरोध नहीं पैदा करतीं, बल्कि मूल कथा के साथ ही बहती चली जाती हैं। रोजमर्रा के जीवन से उठाई गईं ये छोटी-छोटी घटनाएँ उपन्यास को रोचक और पठनीय बनाती हैं। उपन्यास के पात्र भी आम जीवन के आस-पास से ही उठाए गए हैं इसलिए वे पात्र पाठक को बहुत अपने से लगते हैं। पात्रों को बनाते समय लेखक ने बहुत सावधानी बरती है और आम मध्यवर्गीय जीवन से इन पात्रों को उठाया है। कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि मुकेश दुबे ने अपने पहले ही प्रयास में भाषा और शैली को साध लिया है।

उपन्यास-क़तरा-क़तरा ज़िंदगी, लेखक-मुकेश दुबे, मूल्य 150
प्रकाशक-शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्पलैक्स, बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर (म. प्र.)

उपन्यास पाठक को बाँधे रखता है

पंकज सुबीर

कड़ी धूप का सफ़र, मुकेश दुबे का प्रथम लेखकीय प्रयास है। प्रथम प्रयास हमेशा संभावनाओं से भरा हुआ होता है। उसमें उत्साह भी होता है और बेहतर होने की संभावना भी। मुकेश दुबे ने दो उपन्यास लगभग एक साथ लिखे हैं कड़ी धूप का सफ़र और क़तरा-क़तरा ज़िंदगी और ये दोनों उपन्यास उस समय का सदुपयोग करते हुए लिखे हैं जब हृदय रोग ने उनकी दुनिया को बिस्तर तक सीमित कर दिया था। इसे समय का सबसे बेहतर उपयोग कहा जा सकता है। कड़ी धूप का सफ़र पढ़ते समय लेखक की मनोदशा को भी समझा जा सकता है। लेकिन यह भी है कि लेखक ने अपने पहले ही उपन्यास में जिस प्रकार का विन्यास किया है उससे भविष्य की कई सारी संभावनाएँ दिखाई देती हैं। उपन्यास में लेखक ने भाषा में स्थानीय बोली के शब्दों का बहुत ख़ूबसूरती के साथ प्रयोग किया है जिससे उपन्यास और प्रभावी हो गया है। उपन्यास जिस प्रकार संवेदना के धरातल पर चलता है उससे ज्ञात होता है कि लेखक ने बहुत डूब कर ये उपन्यास लिखा है। दांपत्य जीवन की छोटी-छोटी समस्याओं और फिर अचानक किसी बड़ी समस्या का किसी एक की बीमारी के

रूप में सामने आ जाना, लेखक ने बहुत मनोयोग से इस कथानक को बुना है और रोचकता को पूरे उपन्यास में बनाए रखा है। उपन्यास पाठक को बाँधे रखता है मुकेश दुबे को इस मायने में सफ़ल कहा जा सकता है। कड़ी धूप का सफर उपन्यास जो लेखक का किसी भी रूप में प्रथम लेखकीय प्रयास है, सराहनीय है।

उपन्यास-कड़ी धूप का सफ़र, लेखक-मुकेश दुबे, मूल्य 150
प्रकाशक-शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्पलैक्स, बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर (म. प्र.)

पुस्तक–समीक्षा

शब्दातीत अनुभूतियों की रचनाएँ

डॉ. पुरुषोत्तम दुबे

शब्द अपने हलक में जब संवेदना गटकते हैं तब निःसृत होती कविता। अनुभूति की मसनद पर जब भाव आसनगत होते हैं तब विस्तार लेती कविता। तटों का मोह तजकर जब मँझदार को आजमाने की 'हूक' उठती है तब परिभाषित होती कविता और जब कलम के भरोसे अभिव्यक्ति अपना आचमन करती है, तो संसृति में समाहित होने को निकल पड़ती कविता। कविता की ऐसी और इतनी प्रीतिकर मुँहजोरी कवि आनंद पचौरी के काव्य-संग्रह 'चलो लौट चलें...' में संग्रहीत कविताओं की टोह लेने के दरम्यान देखने को मिलीं 'मन कहता है' और 'मन करता है', कहने और करने के मध्य साम्य बिठाती कवि आनंद की कविताएँ धरती की पाठशाला में पढ़ी-गुणी होकर परंपरा और पहचान को बचाती हुई मिलती है। अंतस के प्रकाश से ही अपना पथ प्रकाशमान करती कविताएँ सचेत करती हैं कि पीड़ा की अंतहीन शृंखला अपेक्षाओं से ही उपजती है, यही वह अंकुश है जो कवि आनंद की कविताओं में 'ठहराव' पैदा करता है। तभी तो कवि प्रेम और स्नेह की शाश्वत भाषा को बिना बोले ही गढ़ लेता है, और शब्द को आँखों से पढ़ी जाने वाली जीवंत लिपि में रूमानियत कर कविताओं को तादात्म्य की अवस्था तक पहुँचा देता है। सृष्टि की सृजनात्मक सत्ता का सार समेटकर, इसी बोध को अपनी काव्याभिव्यक्ति का माध्यम बनाकर अपने रचना कर्म को कवि सृष्टि से उदित हुआ मानते हुए प्रतिकार के अर्थ में सृष्टि में ही विलीन हो जाने की प्रक्रिया से जोड़ने का उपक्रम रचता है। अलबत्ता कवि को समझ है कि यह प्रक्रिया अंतहीन है, लेकिन इसी प्रक्रिया के अनंतर कवि का सृजन धीरे ही सही मगर गति से संयोग बनाए हुए है। प्रेम, कवि की भूख नहीं, प्रत्युत कवि के लिए प्रेम ही सृजनात्मक शक्ति है। प्रेम के पंख लगे हों तो उड़ानों के लिए एक पूरा आसमान भी कम पड़ता है। वियोग ही मिलाप की पहली दस्तक है। वियोगी हृदय गर्म लू के थपेड़ों से झुलसे जज़्बात लिए सूखे पत्ते-सा दिशाहीन दिशा में उड़ता फिरता है। लेकिन यह चिर विरह नहीं और न ही कोई खण्डित संकल्प की दीन-दशा है। जिस घड़ी प्रेमी के सीने में प्रेयसी के माथे का सिंदूरी सूरज उगेगा, प्रिय का व्यथित मन कुहासों के अंधेरों से उबर जाएगा।

कवि आनंद अपनी कविताओं को भीड़ में प्रदर्शित नहीं करना चाहते। भीड़ 'रिश्तों' को उछालती है। बरक्स इसके कवि रिश्तों को अपनी रगों में बहने वाले रक्त की तरह तरजीह देता है और अपनी कविताओं के द्वार प्रेमी और निर्मल मन के लिए खुले छोड़ता है। 'प्रेमी हृदयों और निर्मल मन के बीच, स्वछंद और स्वतंत्र, अल्हड़ बेटी-सी बहेगी मेरी कविता''। सन्तान के होने, न होने का कारण माँ के होने में ही निहित है। कवि माँ के चेहरे का अक्स 'नन्स' तक में ढूँढ लेता है। पुरानी साड़ियों-सी तार-तार होती माँ की स्मृतियाँ, कवि को 'नन्स' के शुभ्र धवल वस्त्रों में साकार रूप में परिणत हुई मिलती है। 'नन्स' को हर बेसहारा चेहरा आशा, विश्वास और स्नेह की तरंगिनी को अपनी आँखों में निरंतर झरता हुआ पाता है। व्यष्टि रूप में संतान की माँ अपने ममत्व के अर्थ को 'नन्स' के रूप में समष्टि के महाभाव तक स्थापित किए हुए है। कवि का यह भाव कवि की सामाजिक चेतना को उद्घटित करता मिलता है।

वर्तमान में समाज का हर चेहरा मुखौटा है। कवि कहता है कि, 'सब एक दूसरे से छुपा रहे हैं चेहरे।' अस्तित्वहीन अस्तित्व की भला क्या कोई परिभाषा हो सकती है? 'बहरे बहरों को बँधा रहे हैं ढाँढ़स।' बस ऐसे ही घटित हो रहा है समय 'चौराहों पर बैठी अंधी भीड़ के मध्य से'। लेकिन मुखौटों से आवेष्ठित चेहरों की तुलना में विश्वसनीय है मुफलिसों के चेहरे जिनकी मुट्ठियों में बंद रहती हैं

आँधियाँ और गुबारों में सल्तनतों की रोशनियाँ तक फना हो जाती है। 'तुम शायद भूल गये, कि मुफलिसों की मुट्ठियों में बंद रहती है आँधियाँ, जिनके गुबारों में, सल्तनतों की रोशनियाँ फना हो जाती है।' कवि आनंद कविताओं के लिफाफे तैयार नहीं करते और न ही ऐसा ही कोई मजमून गढ़ते हैं, जो लिफाफों में बंद कर भूली जाने वाली सामग्री बनकर समाज की आँखों से कहीं दूर पहुँचकर, क़ैद हो जाये। प्रत्युत कवि अपनी कविताओं में साक्षात्कारों के परिशिष्ट खोलता हुआ मिलता है, यानी केवल और केवल उन्हीं मनचीती बातों का काव्यालेखन प्रस्तुत करता है, जिनका साबिका अकेले कवि को नहीं पाठकों से भी पड़ा मिलता है। भाव-विचरण का यह अनोखा संगम कवि की कविताओं के तट पर ही मिल जाता है। तट पर ही डूब जाने का तिलस्मी सौजन्य कवि से बढ़कर कौन गढ़ सकता है। कवि आनंद की कविताओं में ऐसी विलक्षण जादूगरी है जो परतदार चट्टानों में भी रस-रसायन का आस्वाद घोल देती है।

भाषा ही कविता का शृंगार है। कहाँ कितना आदर्श झाड़ना है, कहाँ कितना यथार्थ विवेचित करना है और कहाँ अल्प अवकाश के क्षणों में भी सांकेतिकता की ताकत से विस्तृत अर्थ भर देना है, यही कौतुक कवि आनंद की कविता का सार है। कवि भाषा की पीठ पर शिल्प को लादता नहीं, वरन् भावों के बहाव में उन्हें बहने जाने देता है। बहाव में ही बहकर जैसे षटकोणी पत्थर घिस-घिस कर सालिग्राम बन जाता है, उसी अवस्था में कवि की कविताओं में कवि द्वारा परोसे गए लुनाई से ओतप्रोत शिल्प के आवरण उठते मिलते हैं।

पुस्तक : चलो लौट चलें....रचनाकार : आनंद पचौरी, मूल्य : 150.00
प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, पी. सी. लैब, सम्राट काम्पलेक्स बेसमेंट, बस स्टैण्ड सीहोर-466001 (म. प्र.)

पुस्तक–समीक्षा

डाली मोगरे की : इसकी खुश्बू दिलकश है

मयंक अवस्थी

गज़ल किसी की भी हो कहीं भी जा रही हो लेकिन इसके दीवाने इसे आसमान पर बनाये रखते हैं-ऐसे ही एक दीवाने को मैं भी जानता हूँ जिनका नाम है नीरज गोस्वामी। नीरज ग़ज़ल के दीवाने हैं और दीवानगी क्या नहीं कर सकती लेकिन पिछले दिनों इस दीवाने के पैकर से एक शायर नुमाया हुआ जो शाइस्तगी और इज़हार के मुआमले में इतना प्रभावशाली साबित हुआ कि उसके कई अशआर बरबस ही मुँह से वाह वाह निकलवा ले गये। ''डाली मोंगरे की'' पहला मरहला है इस शायर के सफर का और निश्चित रूप से नीरज सारी प्रशंसा और सारे प्रोत्साहन के हकदार हैं। इस संकलन में 98 गज़लें हैं, जो अनुभूति और इज़हार के संयोग या द्वंद्व से उपजी हैं। ये ग़ज़लें ख़्याल की दृष्टि से औसत, भाषा की दृष्टि से बड़ी हद तक निर्दोष और स्वीकार्य और प्रयास की दृष्टि से बिना रुके ताली बजाने के इम्कान रखती हैं। तसव्वुफ़ पिरोने की कोशिश नहीं की गई है, जिसके लिये नीरज जी को बधाई और किसी अन्य शायर की रिप्लिका बनने की कोशिश भी नहीं की गई है-जिसके लिये वे प्रशंसा के हकदार हैं। इसके सिवा एक बात जो विशेष रूप से उल्लेखनीय है और हर उम्र के शायर के लिये प्रेरणास्रोत हो सकती है, वो ये है कि जिस उम्र में नीरज जी का यह संग्रह प्रकाशित हुआ है उस उम्र तक बेशतर शाइरों में संग्रह छपवाने के हौसले की हौसलाशिकनी हो चुकी होती है। उनका जोश उनकी उमंग और उनकी शायरी ज़िंदगी जीने की कला सीखने वालों के लिये एक वृहत प्रेरणास्रोत का कार्य कर सकती है। बेशतर अशआर मशविरे और कहने की शक़्ल में हैं यानी शायर का तसव्वुर किसी से संवाद करने के मर्कज़ पर तख़्लीक में उतरता है-इसमें आत्मालाप की शैली बहुत कम है-जिसका अर्थ है कि शायर वृहत सामाजिक दायरों में जीता रहा है और जीने का आदी है, लेकिन भीड़ में तनहाई का ख़्याल और अपना अलग रास्ता बनाना उसके जेहन में ज़िंदा है...शायर के पास एक अंतर्दृष्टि है जो सतही प्रभावशाली से अलग हट कर देख सकती है...देखने में मकाँ जो कच्चा है/दर हक़ीकत बड़ा ही कच्चा है

नीरज का स्वर सामाजिक प्रवक्ता का स्वर है और उनकी नज़र से ज़ुबान तलक जो फलसहा है वो तस्लीम किया जाने काबिल है प्रचलित शब्दों के विभव को उन्होंने पहचाना है और लफ़्ज़ को दायरे से आगे के मआनि देने में वो समर्थ हैं रस्सी को साँप समझ डरते रहे/और सारी ज़िंदगी मरते रहे।

नीरज की कई ग़ज़लों में याद रखने वाले शेर मिल जाते हैं, जो अपनी ताज़गी और कहन की नवीनता के सबब खासे प्रभावित करते हैं...कब तक रखेंगे हम भला इनको सहेज कर/रिश्ते हमारे शाम का अखबार हो गये

नीरज का संकलन एक ऐसे समय पर आया है-जब ग़ज़ल भाषा की संधि रेखा पर खड़ी है-इस समय ग़ज़ल की ज़ुबान को हिंदुस्तान की सर्वस्वीकार्य ज़ुबान बनाने का आवेग ज़ोर पकड़ रहा है-ऐसे में अदब और आवाम की शायरी भी एक दूजे को आने वाले वक़्त में हम आहंग करेंगी। अदब की वरीयता फिक्रो-फन के उरूज़ की पैरवी करती है और आवाम की चाहत संप्रेषणीय भाषा में कही गई ग़ज़ल है। ग़ज़ल की मूल 19 बहरो में कुछ ही अधिकतर प्रयोग की जाती हैं। अच्छी शायरी का अर्थ है कि आप अपने समय के साथ खुद को सिंक्रोनाइज़ कर सकें। मुझे उनकी तख़्लीक में वो अनासिर दीख पड़ते हैं, जो दौरे हाज़िर में स्क्रीन पर बने रहने के लिये आवश्यक होते हैं। नीरज जी के पास आश्वस्त करने वाला शब्द भंडार है। हिंदी और उर्दू ज़ुबान और लहजे का एक सुंदर सम्मिश्रण उनके पास है। ग़ज़ल के व्याकरण का उनको बखूबी ज्ञान है और उनका इज़हार दिलो जेहन तक रसाई रखने में समर्थ है। यह संकलन तस्लीम और इस पर उनको बधाई-और एक मश्वरा मैं उनको देना चाहूँगा-तस्व्वुर में खुद को खुदा को और खिला को शाहिद बनाकर कुछ ग़ज़लें कहिये-इससे ग़ज़ल में तसव्वुफ़, वुसअत और शीशागरी के इम्कान खुलेंगे। मालिक की दुआ से आपकी सरिश्त एक ज़रखेज़ ज़मीन रखती है और आपके शायर के पास बहुत कुछ ऐसा है, जिस पर रश्क किया जा सकता है।

किसी पौधे में फूल का आना विधायक ऊर्जा के विभव को सकारात्मक दिशा मिलना होता है। नीरज जी जैसे साहित्यानुरागी के संकलन का प्रकाशित होना ऐसी ही संभावना के साकार हो जाने जैसा है। ये ऐवान उन्होंने खुद अपनी मेहनत से बनाया है। ''डाली मोगरे की'' के मंज़रे आम होने पर मुझे जितनी खुशी है, मैं इसका बयान नहीं कर सकता। उन्होंने अपनी ऊर्जा को एक बेहद सार्थक दिशा उसी दिन दे दी थी जब तब्सरा लिखने के अलावा खुद भी शेर कहना आरंभ कर दिया था और ख्वाब की ताबीर भी जल्द हुई जब ये संकलन हमारे हाथों मे आ गया है। मेरा दृढ़ विश्वास है कि जिस व्यक्ति के संस्कार प्रबल होते हैं जिसका मानस निष्कलुष होता है, जिसमें प्रेम, धैर्य और समकालीन समाज और संधर्मियों को सम्मान और सहारा देने जिससे उच्च मानवीय गुण होते हैं वही अपने दौर का सच्चा और अच्छा शायर हो सकता है-कहने की ज़रूरत नहीं।

डाली मोगरे की, ग़ज़ल-संग्रह नीरज गोस्वामी, मूल्य 150/
प्रकाशक-शिवना प्रकाशन, सम्राट काम्प्लैक्स, बेसमेंट, बस स्टैण्ड, सीहोर, (म. प्र.)

अत्यंत सहज तरीक़े से लिखी हुई कविताएँ

प्रकाश अर्श

मधु अरोड़ा को पाठक अभी तक एक बहुत अच्छी साक्षात्कारकर्त्ता, संवेदनशील कहानीकार के रूप में जानते रहे हैं, लेकिन अब इस संग्रह के माध्यम से उनका कवयित्री रूप भी पाठकों के सामने आ रहा है। मधु अरोड़ा की कविताओं को पढ़ते समय महसूस होता है कि वे अपनी कविताओं के विषय रोज़मर्रा के जीवन की छोटी-छोटी घटनाओं से ही उठाती हैं। वे विषय जो आपके हमारे सबके जीवन में रोज़ सामने आते हैं, उन्हीं विषयों पर कविताएँ और वो भी अत्यंत सहज तरीके से लिखी हुई कविताएँ इस संग्रह में हैं। इन कविताओं को पढ़ते समय हमें अपने जीवन में घटी हुई उन घटनाओं की याद आती है, जो कविता में हैं। मधु अरोड़ा ने अपनी कविताओं में जो शब्द लिये हैं जो भाषा उपयोग की है, वह बहुत सहज तथा सरल है। वे अपनी कविता में बहुत आडंबर नहीं रचती हैं, उनकी कविता आमजन की भाषा में बात करती है। उनकी कविता पाठकों को कभी भी उलझाती नहीं हैं, इसलिए ये कविताएँ हर किसी को अपने बहुत क़रीब लगेंगी। एक महत्त्वपूर्ण बात उनके संदर्भ में ये है कि उन्होंने उस उम्र में लिखना प्रारंभ किया है, जिस उम्र में अमूमन लिखना कम हो जाता है या कभी-कभी छूट भी जाता है। ऐसे में ये कविताएँ और भी महत्त्वपूर्ण हो जाती हैं। मधु अरोड़ा की कहानियाँ जिस प्रकार पसंद की गईं हैं, सराही गईं हैं। उसी प्रकार उनकी कविताओं को भी पाठक पसंद करेंगे।

मधु अरोड़ा, तितलियों को उड़ते देखा है, मूल्य-150
प्रकाशक-शिवना प्रकाशन, सीहोर

पुस्तक–समीक्षा

अतीत की परछाइयोंकी तरह .... पाठकों का पीछा करती है

रामेश्वर काम्बोज

'सरकती परछाइयाँ' में दो संस्कृतियों के टकराव के साथ (पतंग) अस्तित्व का संघर्ष है। सच कहूँ-में चाँद-तारों की सुहानी बातें नहीं, संघर्षमय जीवन का कटु यथार्थ है। जिसमें, पर पीड़ा, वेदना, तन्हाई, दर्द भरा है जो उसे अकेले ही सहना है। वर्षों की यात्रा में पाइन वृक्ष के साये...दादी की चटाई की याद दिला गए। दादी की मुग्धकारी स्मृतियों के बहाने कवयित्री का अतीत के पन्ने पलटना बड़ा सुखद लगता है जो पाठक से बरबस तादात्म्य स्थापित कर लेता है। दादी की टाँगों पर झूला झूलना, उनको गुदगुदी करना, बहुत-सी सुखद स्मृतियों और उनके साथ की गई चुहुलबाजियाँ चित से नहीं उतरती। वह अमेरिकी महिला लम्बी कविता केवल कविता नहीं है, यह पूरी नारी जाति की संघर्ष गाथा है। एक सामान्य बात भारत हो या अमेरिका, सन्तान के प्रति माँ का अनुराग और संघर्ष एक जैसा है। विषम परिस्थितियाँ दोनों को ही झिंझोड़ती हैं। इस कविता की सबसे बड़ी बात है इसका कथारस, प्रमाता को बाँध लेने की व्यापक संवेदना और यह अहसास करने का माद्दा कि श्रेष्ठ रचना पाठक के मनोमस्तिष्क पर उत्कीर्ण हो जाती है। सुधा जी की कविताओं में मार्मिक कथा जैसी गहरी कसक की अनुभूति होती है। कविता में भी श्रेष्ठ कथा जैसा दमखम आज भी है, इस कविता का सबसे बड़ा प्रमाण है। पठनीयता का अजस्र प्रवाह आश्वस्त करता है।

ये कविताएँ अतीत की परछाइयों की तरह सहृदय पाठकों का पीछा करती है। परछाई के साथ जो उजाला जुड़ा है, वह स्मृतियाँ में आकर हृदय को मथ देता है। उलझन का अन्तर्द्वन्द्व है सुख-समृद्धि के कठोर पहियों के नीचे मानवीय संवेदना के चिथने की दारुण कथा है। वृद्धों की बात में मुन्नी अकेली पड़ गई। सबके लिए खटती रही, जीती रही। नहीं जी तो बस सिर्फ अपने लिए। बुढ़ापे में कोई साथी नहीं रहा, रह गया सबके लिए बँटने के बाद बचा सिर्फ उसका अकेलापन। 'अनुभव क्षणिका' में भी वही शाश्वत दुःख है, हादसों के बाद सिलवटें छूट जाने का। गहरे अवसाद में डुबो जाती है ये कविताएँ। 'विडम्बना' में अनब्याही माँ का गहरा दर्द और भविष्य के लिए आशाओं का उजाला मन में सँजोए एक माँ है, जो दुनिया की घृणाभरी नज़रों को झेलकर भी हार नहीं मानती। सुधा जी की यह भी लम्बी कविता है। उनका कथाकार मन इस कविता-कथा के रेशे-रेशे को सहज संवेदना से भर देता है। कविताएँ लम्बी हो सकती हैं, लेकिन उनमें कथा-तत्त्व का समावेश और निर्वाह करना बहुत कठिन है। ये नए तेवर की कविताएँ अपनी जीवन्तता का अहसास कराने में सक्षम है। कथा की ताज़गी अभिव्यक्ति और शिल्प की सादगी इन कविताओं को आम आदमी से जोड़ती हैं। अमेरिका और भारत के दोनों छोर इन कविताओं से बँधे है। ये सरकती परछाइयाँ पाठकों का बहुत दूर तक पीछा करती हैं। जाने दो- अनुराग भरी कविता, ग्लोबलाइज़ेशन की दौड़ में बड़े-बुजुर्ग छूट गए। गंतव्य की यात्रा अंतिम-यात्रा के साथ कुछ सनातन प्रश्नों की पड़ताल करती है। सच कहा आपने. ..मैं विरोधी संस्कृति के साथ संघर्ष, अस्तित्व और स्वाभिमान की धारधार अभिव्यक्ति है। भटकन-तलाश है मानवीयता की। दौड़ में वह भटकाव है जो आज भारत छोड़कर विदेश में बसने वालों की नियति बन गई है। कटु सत्य में एक दर्द समाया हुआ है कि मृत्यु है सत्य तो अपनों का बिछुड़ना है कटु सत्य, और लौटेंगें जब हम अपने वतन में... ढूँढ़ेंगे उन चीज़ों को जो बचपन से जुड़ी थी, लेकिन वे मिलेगी नहीं। कविता बहुत द्रवित करने वाली है। ऐसी ही करुण कविता है- मत रोना। क्षणिकाएँ अलग तेवर लिये हैं। आचमन का सौन्दर्यबोध, ज़िन्दगी की सारहीनता, अकेलापन द्वारा उपेक्षित बुजुर्गों का चित्रण लिये हैं। दो किनारे, चैन, खुशियाँ, वादे जैसी क्षणिकाएँ अपनी त्वरा के लिए पाठक के मन पर स्थायी छाप छोड़ने वाली हैं। सभी रचनाओं का भाव -वैविध्य कवयित्री के बहुआयामी जीवन अनुभवों का साक्षी बनकर सामने आया है।

'सरकती परछाइयाँ' काव्य संग्रह-सुधा ओम ढींगरा, मूल्य 150
प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सम्राट कॉम्प्लेक्स बेसमेंट, बस स्टैंड के सामने, सीहोर, (म.प्र.) 466001

पुस्तक–समीक्षा

हत्या की पावन इच्छाएँ : एक मूल्यांकन

जसविंदर कौर बिंदा

भालचंद्र जोशी कहानी-विधा से बहुत गहरे जुड़े हुए हैं। पांच कहानी-संग्रहों तथा अनेक सम्मानों से सम्मानित भालचंद्र जोशी का नवीन कहानी-संग्रह 'हत्या की पावन इच्छाएँ' है। आठ लंबी कहानियों वाले इस संग्रह में सभी कहानियाँ अलग-अलग विषय तथा जीवन स्तर को प्रस्तुत करती हैं।

लेखक की कहानी-विधा समय तथा परिस्थितियों का ताना-बाना बुनती है। उसकी कहानियों में किसी विशेष वर्ग या श्रेणी को नहीं देखा जा सकता। जितना वह ग्रामीण परिवेश को जीवंतता से पेश करता है, उतना ही शहरी परिवेश को भी। भालचंद्र की कहानियों की सबसे बड़ी खूबी इसका विषय या कथानक नहीं, इसकी भाषा-प्रवाह है। इस भाषा प्रवाह में ऐसा बहाव है कि यह पाठकों को अपने साथ बहा ले जाता है।

संग्रह के शीर्षक वाली सर्वप्रथम कहानी 'हत्या की पावन इच्छाएँ' ऐसी लोक कथाओं तथा लोक-बोली में लिखी गई कहानी है कि आज ऐसी भाषा ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलती यह कहानी एक लोक-कथा की भाँति ही हैं क्योंकि इसमें राजा, साधू और वीर पुरुष से पात्र है। इनाम में राजा से मिली तलवार से वीर पुरुष को हिदायत दी गयी कि उसने इससे पावन हत्या ही करनी है। इसमें बहुत बड़ा व्यंग्य छुपा है, 'हत्या और उसकी पावन इच्छाएँ' दोनों शब्दों में अंतर्विरोध निहित हैं तलवार न्याय प्रियता का भी प्रतीक है और युद्ध का भी। अब यह उसे इस्तेमाल करने वाले पर निर्भर करता है कि वह क्या करता है। लोक बोली, मुहावरे भरी भाषा में लिखी यह कहानी मानो सूक्तियों से भरी है जो हमारे लोक कथाओं, वार्ताओं के मूल में निहित है।

मनुष्य का प्रकृति से नाता अटूट रहा है, मगर प्रकृति उससे छेड़छाड़ करने वाले को बख्शाती नहीं, फिर इसका कोप भी झेलना पड़ता है। नदियां उफान से भर जब बाढ़ के रोष में सब कुछ बहा ले जाती हैं तो पीछे क्या बनता है? सब कुछ यथास्थान होते हुए भी यथास्थिति में नहीं रह पाता। घर-द्वार, सामान, व्यक्ति सभी कुछ उस उफान की भेंट चढ़ जाता है। इसके बावजूद वहाँ बाकी कुछ बच जाता है। विशेषकर इमारतें, स्मृतियाँ तथा स्मृति चिह्न। इन्हें कोई तेज़ बहाव अपने साथ बहाकर नहीं ले जा पाता। नदी के तहखाने में एक शहर/कस्बा/गाँव जो बाढ़ में डूब चुका है, अब पीछे वहाँ क्या रह गया है, इसे देखने एक पुत्र अपनी पत्नी के साथ नक्शे की सहायता से वहाँ तक पहुँचता है। उसके घर में अब जलचरों का राज है, कहीं मगरमच्छ और कहीं चूल्हें में तैरती मछलियाँ। बीच में जंगल से गुजरते हुए प्रकृति की गोद में उसके साहचर्य में पति-पत्नी का साहयर्च प्रेम अलौकिकता ग्रहण कर लेता है।

'रिहाई' गुजरात दंगों के बाद मौलवियों के संपर्क में आये ऐसे स्कूल मास्टर की जो किसी जेहादी के प्रवचन से प्रभावित होकर सोचने लगता है, मगर अनपढ़ सज्जाद चाय वाले की सीख उसे नये सिरे से सोचने पर मजबूर कर देती है, जिसने इस दंगों में अपने जवान बेटे को खोया है। मगर वह सोचता है इस लड़ाई से फायदा क्या? कहानी सफेद गुलाब की टहनी को शांति के परचम की भांति एक छोटी लड़की के हाथों लिजाने पर जब खत्म होती है जो एक नया संदेश दे जाती है।

'प्रेम गली अति सांकरी' कहानी प्रेम के सैद्धांतिक व व्यवहारिक पहलुओं पर आज के युवाओं की सोच को उजागर करती है। यहाँ पढ़ाई व शानदार कैरियर अधिक अहमियत रखते है। इसीलिए कंम्प्यूटर की तकनीकी शब्दावली में प्रेम को 'सेव' 'फाइल' आदि शब्दों में डालकर पेश किया है। मगर प्रेम क्या कर सकता है और प्रेम करने वालों की क्या हालत होती है, यह आनन्द कहानी पढ़ने पर ही मिलता है। 'राजा गया दिल्ली', 'पल-पल प्रलय' व बोरचिंदी तक कहानियां व्यवस्था में दिखावटी मगर खोखलेपन की पोल खोलती हैं। तीनों कहानियों में वास्तविकता में कुछ भी नहीं, सिर्फ कागज़ों पर विकास, प्रगति, पुनर्वास और न जाने क्या-क्या आयोजनों द्वारा विकास-दर को भी दिखाया जा रहा है और आंकड़े भी दिखाये जा रहे हैं जबकि वास्तविकता में यह कोसों दूर की बात है।

बोरचिंदी तक के पात्र को बैंक से सिर्फ इसलिए

सस्पैण्ड कर दिया जाता है, क्योंकि वह न खाता है न खाने देता है। लोन पास करने के मसले को लेकर सबूतों के बावजूद उसे झूठा करार दे, अन्य कर्मचारियों को उसकी सजा के द्वारा अनकहा सबक दिया जाता है। 'बोरचिंदी तक' एक रिवायत है, जिसमें शमशान तक ले जाने वाली अर्थी को शमशान से थोड़ा पहले एक जगह नीचे रखकर और उसके कफन से एक टुकड़ा फाड़कर किसी टहनी या कहीं पर बांध ा जाता है ताकि जिस व्यक्ति ने दाह-संस्कार से पहले वापस जाना हो, वह जा सकता है। संस्पेड होने के बाद अपने गांव लौटने के इरादे से उसके दोस्त उसे बस अड्डे तक छोड़ने आते है, जिसे पात्र बोरचिंदी तक छोड़ना समझता है।

कागज़ों पर मिले मुआवज़े की शिकायत करने दो पात्र जगन और कालू बहुत आशाओं के साथ अपने सरपंच की चिट्ठी तथा अर्ज़ी लेकर शहर में सीधे मंत्री से मिलकर अपनी शिकायत बताने आते है। मगर मंत्री जी दिल्ली गये है, जो तीन-चार दिन बाद आते है। उन भोले ग्रामीणों को वहाँ पल-पल काटना मुश्किल है। शहर में खाना-पीना भी बहुत मंहगा है। अंत में मंत्री जी से मुलाकात होती है और वह आश्वासन भी दे जाते है। जबकि लौटते हुए ग्रामीण जान जाते हैं कि यह आश्वासन कोरा है, झूठा है। राजा गया दिल्ली ग्रामीण-शहरी परिवेश ही नहीं यहां के लोगों की सोच को भी सूक्ष्मता से बयान करती है।

नये-नये सपने दिखाकर भोले-भाले लोगों को कर्ज़ लेने की ओर उकसाया जाता है। फिर कागज़ों का विकराल रूप धारण हो जाने पर बैंक वाले या दूसरे फाइनेंसर क्या-क्या हथकंडे अपनाते हैं और गाँव में विकास, प्रगति के नाम पर होने वाले आयोजनों में क्या-क्या नाटक कराकर दिखाये जाते है। इस कथानक को बखूबी बयान किया है। लेखक ने पल-पल प्रलय में कहीं कर्ज़ का मार, कही शेयर मार्केट का डूब जाना आजकल खुदकुशी करने के सबसे बड़े कारण बन चुके है। मगर सब कुछ चल रहा है। कर्ज़ उगाहने वाले पुलिस वालों से भी अधिक क्रूर तथा अमानवीयता का व्यवहार करने लगे हैं। इसके बावजूद गाँव में अत्यंत गरीबी ने अपने दो मित्रों द्वारा खुदकुशी कर लेने के बावजूद तीसरा मित्र बिना किसी साधन के भी, दोनों मित्रों के परिवारों की अब स्वयं पर नैतिक जिम्मेदारी समझता है और इसे निभाने को तैयार भी है।

सभी कहानियां नये विषयों के साथ पाठकों के सामने आती है और अपने यथार्थ चित्रण, दार्शनिक अंदाज़ आम मनुष्य के अंतस की गहराई कहीं-कहीं मासूमियत से भी अपने भाषा-संवादों के साथ पाठकों को बांध लेती है। जिस तरह के पात्र, उसी संदर्भ अनुसार भाषा बोली को लेखक ने लिया है, तभी उस यथार्थ तथा पात्र-चित्रण में जीवतंता लगती है, बनावटीपन नहीं। कुल मिलाकर यह नवीन कहानी-संग्रह एक उत्तम रचना है।

35 मस्जिद रोड़, जंगपुरा, भोगल, नई दिल्ली-14

हत्या की पावन इच्छाएँ, भालचंद्र जोशी
राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2014, मूल्य-250

पुस्तक–समीक्षा

विभाजन का दंश झेलता भारत और हिंदी साहित्य

विजेंद्र प्रताप सिंह

सभ्यता के विकास में जब-जब नया अध्याय जुड़ा, तब-तब जंगों का जन्म हुआ। विश्व स्तर पर सर्वत्र यही कहानी दोहराई गई। भारत भी इसी क्रम की एक कड़ी है। भारत की परतंत्रता से स्वतंत्रता प्राप्ति पर जिन परिस्थितियों का जन्म हुआ, वे साम्प्रदायिकता के लहू के रंग में रंगी हुई थीं। यद्यपि यह भी गौर करने योग्य है कि आपसी सामंजस्य की कमी केवल अंग्रेजों की 'फूट डालो और शासन करो' राजनीति का परिणाम नहीं थी बल्कि हमारे अपने भी दागदार रहे या हो चुके थे। जब भी भारत में सांप्रदायिकता के बढ़ते कदमों को रोकने की मुहिम शुरू करने की बात आई तो तथाकथित सामाज के ठेकेदारों ने इसे सीधे अंग्रेज़ी राजनीति से जोड़कर अपना दामन बचाते हुए मुहिम का हिस्सा बनने से पल्ला झाड़ लिया। लोग मानते हैं कि ब्रिटेन की छलपूर्ण नीति, मुस्लिम लीग की फूटनीति, भारतीय जनता में दृढ़ता और सामर्थ्य का अभाव, कांग्रेस की दायित्व निर्वहन में अक्षम भूमिका व अवसर के प्रति अचेत रहना और गांधीजी की अहिंसा की नीति के कारण देश का विभाजन सही नहीं हुआ। भारत की आज़ादी के साथ जुड़ी देश-विभाजन की कथा, बड़ी व्यथाभरी है। कुछ लोग भारत विभाजन के खिलाफ थे, कुछ पक्ष में थे और कुछ ऐसे लोग थे, जो भारत के धर्म आधारित विभाजन के खिलाफ थे, तो कुछ लोग ऐसे भी थे जो यह मानते थे कि जब धर्म के आधार पर विभाजन हो ही रहा है तो फिर जनता की अदला-बदली भी पूरी तरह से होनी चाहिए और ठीक-ठीक विभाजन होना चाहिए ताकि बाद में किसी प्रकार का विवाद न हों। ऐसा नहीं है कि हमारे देश में सेकुलर विचारधाराएँ सामने नहीं आई या नहीं आ रही है, आ तो रही हैं पर उस तरह नहीं, जिस तरह आनी चाहिए। कभी मजहब की गहरी समस्या मुंह उठा खड़ी होती है तो अन्य हृदयी लोगों के साथ-साथ लेखक के भीतर का धार्मिक व्यक्ति भी परेशान हो उठता है। हम पल में इंसान नहीं रह जाते हैं, कोई हिंदू तो कोई मुसलमान बन जाता है।

नेताओं की सत्ता लोलुपता के कारण ही विभाजन की त्रासदी से भारतवासियों को दो भागों में बंटना पड़ा और उसी के परिणामस्वरूप दोनों ओर से हजारों-लाखों लोगों का संहार हुआ। विभाजन की घोषणा के बाद जुलाई-अगस्त 1947 से जो संहार प्रारंभ हुआ, वह विभाजन के बाद भी कई महीनों तक अनवरत चलता रहा और उसकी पीड़ा आज तक हमें दिखाई देती है। मात्र तीन माह की अवधि में ही पाकिस्तान में बसे 90 प्रतिशत हिंदू हमेशा के लिए अपनी पैतृक भूमि को छोड़ने के लिए विवश हुए। विभाजन की नींव इमारत बन चुकी थी जिसने हमेशा के लिए हिंदू-मुस्लिम एकता को छिन्न-भिन्न कर दिया, जो लाख प्रयत्नों के बावजूद आज भी कायम है और न जाने कब तक रहेगी।

विदित है साहित्य को समाज के दर्पण की संज्ञा प्रदान की गई है। यद्यपि वर्तमान संदर्भों में यह कितनी प्रासंगिक रह गई यह पृथक् रूप से विचार का विषय है। हम इसी परिभाषा के आलोक में भारत-पाकिस्तान विभाजन की त्रासदी को यदि हिंदी साहित्य के संदर्भ में देखे तो स्पष्ट कह सकते हैं कि इस विराट त्रासदी को लेकर हिंदी साहित्य लेखन के क्षेत्र में कोई सआदत हसन मंटो पैदा नहीं हुआ। क्यों नहीं कोई उनकी तरह 'टोबाटेक सिंह' या 'खोल दो' जैसी दिल दहलाने वाली कालजयी कहानियां लिख पाया? अधिकांश हिंदी के साहित्यकार इस त्रासदी के बारे में लिखने से बचे या चुप्पी साध गये। यह विचित्र संयोग है कि हिंदी के काफी लेखक जो उस त्रासदी से गुज़रे थे। यहां तक कि भीष्म साहनी, जो त्रासदी के गवाह थे, ने भी बंटवारे पर लिखा तो लेकिन बहुत बाद में ही। यशपाल हिंदी में अकेले ऐसे लेखक हैं जिन्होंने विभाजन को अपने सबसे बड़े उपन्यास का केंद्रीय कथ्य बनाया, पर विभाजन पर यह उपन्यास भी काफी लंबे अंतराल के बाद लिखा गया।

आखिर हिंदी पर वह कौन-सी मानसिकता हावी रही थी कि विभाजन को लेकर बड़े-बड़े हिंदी के लेखक या तो पूरी तरह असंपृक्त थे या फिर उनमें से कुछेक ने इतनी देर से इस विषय को उठाया? बहुत से ऐसे प्रश्न हैं जिनका उत्तर संभवतः हम सभी जानते तो हैं पर उनका उल्लेख करने से ठीक उसी तरह बचना चाहते हैं जैसे वे लेखन से बचते रहे।

डॉ. मेराज अहमद द्वारा संपादित पुस्तक ''विभाजन की हकीकत : कथा संदर्भ'' में विभाजन के संबंध में जिन रचनाकारों की रचनाएं उल्लेखनीय रहीं, उन पर विवेचनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत किया है। उन्होंने उक्त पुस्तक में राही मासूम रज़ा कृत 'आधा गांव', 'ओस की बूंद' भीष्म साहनी कृत 'तमस' नासिरा शर्मा के 'ज़िंदा मुहावरे' आदि उपन्यासों का विभाजन की मानसिकता, राष्ट्रीय एकता के संदर्भ, त्रासदी आदि पक्षों के परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण किया है। इसके साथ ही इस पुस्तक में कहानी साहित्य को भी शामिल करते हुए उन्होंने विभाजन की त्रासदी की कहानी वयां करने वाली उर्दू एवं हिंदी की कहानियों पर विचारोत्तेजक लेख तथा मोहन राकेश एवं अज्ञेय की कहानियों में वर्णित दास्तान को भी विवेचित करते हुए पुस्तक को पूर्णाकार दिया है।

डॉ. राही मासूम रजा ने अलीगढ़ रहते हुए अपने प्रसिद्ध उपन्यास 'आधा गांव'(1966) की रचना की जो कि भारतीय साहित्य के इतिहास में मील का पत्थर साबित हुआ। यही वो उपन्यास है जिसने उन्हें एक उच्चकोटि के उपन्यासकारों के रूप स्थापित किया। इसके अतिरिक्त उन्होंने टोपी शुक्ला, हिम्मत जौनपुरी, ओस की बूंद, एक दिल सादा कागज़, कटरा बी आरजू, असंतोष के दिन, मुहब्बत के सिवा, सीन 75 आदि उपन्यास भी लिखे। रज़ा साहब की सबसे ज्यादा पकड़ उर्दू पर थी। उसके अलावा अंग्रेज़ी मगर अंग्रेज़ी में उन्होंने कभी लिखा नहीं था लिखा केवल उर्दू और हिंदी में ही। डॉ. फ़ीरोज़ अहमद के अनुसार ''अलीगढ़ में रहते हुए ही राही ने अपने भीतर साम्यवादी दृष्टिकोण का विकास कर लिया था और भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के वे सदस्य भी हो गए थे। अपने व्यक्तित्व के इस निर्माण-काल में वे बड़े ही उत्साह से साम्यवादी सिद्धान्तों के द्वारा समाज के पिछड़ेपन को दूर करना चाहते थे और इसके लिए वे सक्रिय प्रयत्न भी करते रहे थे।''(http://www.sahityashilpi.com/2008/10/blog-post_5563.html) आधा गांव उपन्यास उत्तर प्रदेश के गाज़ीपुर से लगभग ग्यारह मील दूर बसे गांव गंगौली के शिक्षा समाज की कहानी कहता है। राही ने स्वयं अपने इस उपन्यास का उद्देश्य स्पष्ट करते हुए कहा है कि ''वह उपन्यास वास्तव में मेरा एक सफर था। मैं गाज़ीपुर की तलाश में निकला हूं लेकिन पहले मैं अपनी गंगौली में ठहरूंगा। अगर गंगौली की हकीकत पकड़ में आ गयी तो मैं गाज़ीपुर का एपिक लिखने का साहस करूंगा।'' मेराज अहमद ने मानसिक धरातल पर इस उपन्यास को विश्लेषित करते हुए मानवीय पक्षों को बहुत सटीक तरीके से प्रस्तुत किया है-''आधा गांव विभाजन की त्रासदी के अंकन के बजाय उस मानसिकता को उकेरने के प्रयत्न के रूप में सामने आता है जो सांप्रदायिकता के संदर्भ में कार्यरत है।'' (विभाजन की हकीकत : कथा संदर्भ, पृ. 30)

विभेदक तत्त्वों द्वारा जब गंगौली गांव के हिंदू-मुस्लिम लोगों के अलगाव के बीज बोने शुरू किए तो भी जब तक पूरा देश उसकी चपेट में आकर इधर-उधर नहीं होने लगा तब तक इस गांव के लोग आपसी सौहार्द एवं भाईचारे के साथ होली, दीवाली, मोहर्रम, ईद आदि मनाते रहे। मेराज अहमद ने इस तथ्य को प्रस्तुत करते हुए कहा है कि ''फिर उन्हें विभाजन को लेकर उपजा प्रश्न भला कैसे प्रभावित कर सकता था जो कि अपना लंबा...इतिहास भी रखता था और नहीं उनके लिए खास अहमियत ही थी।''(विभाजन की हकीकत : कथा संदर्भ, पृ. 31)

अक्सर शिया और सुन्नी का झगड़ा सुनने में आता है पर इस उपन्यास में ऐसा कुछ भी नहीं रहा जहां हिंदू-मुस्लिम परस्पर सामंजस्य के साथ रह रहे हों वहां सम मजहब के अलगाव की बात सोची ही नहीं जाती थी। उपन्यास के अनुसार- ''मोहर्रम का ताजिया उठाने वाले हिंदू होते थे तो आगे चलने वाले भी हिंदू। ग्रामीण जीवन में पीर-फकीरों की मजार पर जहां एक तरफ हिंदू पूरी श्रद्धा और आस्था से चादरें चढ़ाते थे वहीं दूसरी तरह मुस्लिम जमींदार मंदिरों के लिए जगह-जमीन की व्यवस्था करने में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लेते थे।'' (आधा गांव, पृष्ठ 175)

''धीरे-धीरे जुड़ाव और एकता की मानसिकता को तोड़ने और खंडित करने वाली शक्तियों की सक्रियता बढ़ी, तो इन तत्त्वों का प्रभाव शहरी मध्य वर्ग से होता हुआ ग्रामीण क्षेत्रों में भी पड़ने लगा, परंतु उनको विशेष सफलता प्राप्त नहीं हुई। अलीगढ़ जो कि लीगी की गतिविधियों का एक महत्त्वपूर्ण केंद्र था, वहां से विश्वविद्यालयों के छात्रों का जत्था गांव-गांव आकर विभाजन के समर्थन में मुसलमानों को लीग के पक्ष में खड़ा करने में लग गया।'' मेराज अहमद के इस कथन से स्पष्ट होता है कि सांप्रदायिकता का जहर समाज में घोलने में विश्वविद्यालयों ने अहम् भूमिका निभाई। इधर अलीगढ़ विश्वविद्यालय मुस्लिम समर्थकों का अड्डा था तो बनारस हिंदू विश्वविद्यालय हिंदुओं का। दोनों ही ने अपने-अपने तरीके से सांप्रदायिकता के जहर को समाज में इस कदर व्याप्त कर दिया कि अब इससे छुटकारा पाना असंभव-सा लगता है।

अपने प्रथम दोनों आलेखों में मेराज अहमद ने सांप्रदायिक तत्त्वों एवं उसके कारणों पर बहुत ही गहनता के साथ विचार किया है, जो उनके इस विषय पर गहन चिंतन का परिणाम है। वे सर्वकल्याण एवं सद्भाव का संदेश देते हुए कहते हैं

कि ''महत्त्वपूर्ण सांप्रदायिकता की अभिव्यक्ति नहीं, महत्त्व है उससे मुक्ति का, जो किसी भी धर्म या संप्रदाय के हित में नहीं, बल्कि पूरे राष्ट्र के हित में है। राष्ट्रीय एकता के नियामक तत्त्व जीवन और समाज की बहुत सारी गतिविधियों से ही उभरकर आते हैं, परंतु सांप्रदायिक सद्भाव कदाचित इस दिशा में सर्वाधिक महत्त्व रखता है।'' (विभाजन की हकीकत : कथा संदर्भ, पृ. 40)

'ओस की बूंद' राही मासूम रज़ा का तीसरा उपन्यास है। इसकी पृष्ठभूमि में भी भारत विभाजन एवं सांप्रदायिकता है। उपन्यास को आगाज तो हिंदू-मुस्लिम सांप्रदायिकता से होता परंतु अंजाम तक तक आते-आते पाठक वास्तविकता से रूबरू हो जाता है कि वस्तुतः हिंदू-मुस्लिम समस्या सिवाय मानसिक भटकाव और राजनीतिज्ञों द्वारा आम इंसान को अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए मोहरा बनाए जाने के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है यदि कोई चीज़ इस दुनिया में असर करती है या उसके योग्य है तो वह है इंसानी दिल में पलने वाले जज्बात और इन हृदय की कोमलकांत भावनाओं उसके एक दूसरे से जुड़ाव का किसी की जात-पात या संप्रदाय से कोई सरोकार नहीं। मेराज अहमद ने 'ओस की बूंद' को विश्लेषित करते हुए लिखा है कि ''उलझाव की इस मानसिकता के भंवरजाल में फंसे लोगों पर पारिवारिक बिखराव दोहरी मार के रूप में प्रभाव था।''(विभाजन की हकीकत : कथा संदर्भ, पृ. 53) विभाजन ने जहां हिंदुओं को मौत दी पाकिस्तान से आने वाली गाड़ियों में किस कदर लाशों के ढेर आए यह विदित है और उधर मुसलमान वहां पाकिस्तान में जाकर भी वहां के अजनबी लोगों में तुरंत शामिल तो हो नहीं सकता था। इसी एकाकीपन की पीड़ा को उजागर करते हुए मेराज कहते है- ''अकेलेपन का बोध मुस्लिम समाज की अस्मिता के सामने प्रश्नचिह्न बन कर खड़ा था। स्वातंत्र्योत्तर भारत में मुसलमानों के साथ बरता जाने वाला भेदभाव, उनकी पहचान के ऊपर लगे प्रश्न चिह्न को और अधिक गहरा रहा था। भेद-भावजन्य पीड़ा समाज को भावनात्मक एवं आर्थिक दोनों धरातलों पर चुभन और टीस पहुंचा रही थी।'' (विभाजन की हकीकत : कथा संदर्भ, पृ. 55)

भीष्म साहनी भारत विभाजन की त्रासदी के प्रत्यक्षदर्शी एवं भुक्तभोगी रहे। अपनी आंखों से देखे गए विभाजन के विकराल रूप को उन्होंने 'तमस' के माध्यम से प्रस्तुत किया है। इसकी कहानी बहुत जीवंतता के साथ प्रस्तुत करने पाने के पीछे भी यही राज है कि वे स्वयं विभाजन के साक्षी रहे। भीष्म साहनी के अनुसार ''मुझे कहानी (तमस की) का ताना-बाना बुनने की, प्लाट बनाने की जरूरत नहीं है। मुझे अनुभवों को फिर से जीना है।''(अपनी बात, 1990, पृ. 189)

मेराज अहमद के अनुसार- ''तमस के माध्यम से पुनरोत्थानवाद की अलगाववादी भूमिका पर गहराई से विचार हुआ है। हिंदू मानसिकता को उत्तेजित करने वाले तत्त्वों का उपन्यास में प्रतिनिधित्व किया है पुण्यात्मा, वानप्रथी, मंत्रीजी, देवव्रत, बोधराज, लाला लक्ष्मीनारायण, रणवीर और महेंद्र इत्यादि ने।'' (विभाजन की हकीकत : कथा संदर्भ, पृ. 63) इस संबंध में विचारणीय है कि किसी भी क्रिया की प्रतिक्रिया अवश्य होती है, वह भले ही किसी भी रूप में हो पर होगी अवश्य। पंजाब शांति पसंद क्षेत्र रहा और जब विभाजन के बाद पाकिस्तान से पंजाबियों और हिंदुओं को बड़ी मात्रा में मरणांतक स्थिति में भेजा गया तो एक विपरीत धर्म के व्यक्ति में निश्चित तौर पर उसके विरूद्ध रोष तो रहेगा ही। अब लेखक वो भी विभाजन हो जाने के बहुत समय बाद जब लिखेगा तब उसकी विचारधारा में अन्य प्रभाव भी अवश्य आएंगे ही। इस संदर्भ में 'तमस' के कथा-काल और रचना-काल को समझना ज़रूरी होगा। 'तमस' का प्रकाशन 1973 में हुआ। इसकी कहानी 1945-46 की है। इसके पाठ का पुनर्आविष्कार, अर्थात् इसके गल्प को वास्तविकता में बदलने का कार्य उसके बाद लंबे अंतराल के बाद आलोचनाओं में किया गया या किया जा रहा है। तात्पर्य यह है कि 'तमस' अपने प्रकाशन से लगभग तीस साल पहले की घटना को गल्प में बदलता है और यह आलोचना 'तमस' के प्रकाशन के चालीस वर्ष बाद उस कहानी को घटना में बदलने का प्रयास कर रही है। सन् 1945 की मानसिक स्थिति और 2014 की मानसिक स्थिति में जमीन-आसमान का अंतर है। इस उपन्यास के पुनर्पाठ को समझने के लिए 1945-46, 1973 और 2014 की मानसिकता का ध्यान में रखना ज़रूरी होगा। '16 अगस्त 1946 से अभूतपूर्व स्तर पर होने वाले सांप्रदायिक दंगों ने सम्पूर्ण भारत का परिदृश्य परिवर्तित कर दिया था। कलकत्ता से शुरू हुए दंगों की लहर बहुत ही तीव्रता के साथ मार्च 1947 तक पंजाब में भी व्याप्त हो चुकी थी। दंगों के रोकने की दिशा में अंग्रेजों की फूट डालों राज करो की नीति तो कार्यरत थी ही साथ ही तत्कालीन ब्रिटिश सरकार ने दंगे रोकने की दिशा में निष्क्रियता दिखाई। यही 'तमस' रेखांकित किया गया है। भले तारीखों का उल्लेख न भी हो परंतु परिस्थिति जन्य साक्ष्य यह सिद्ध करते हैं कि सरकारी रवैया बहुत ही नकारात्मक था।

नासिरा शर्मा के उपन्यास 'ज़िंदा मुहावरे' (1994) की कहानी को संक्षेप में मेराज अहमद के शब्दों में समझा जा सकता है- ''इसमें लगभग पैंतीस वर्ष का समय यानी कि दो

पीढ़ियों की कहानी समाविष्ट है। कहानी का आरंभ विभाजनकालीन परिस्थितियों से होता है। कथा के केंद्र में मध्य पूर्वी उत्तर प्रदेश के किसी गांव के निवासी रहीमुद्दीन का परिवार है। बंटवारा रहीमुद्दीन के परिवार में एक अजीब -सी हलचल पैदा कर देता है। हलचल का कारण उनके छोटे बेटे इनाम का पाकिस्तान पलायन है। उपन्यास में इनाम के पलायन और पुनःस्थापन की प्रक्रिया में जीवन के कालखंड की अनुभूतियों की अभिव्यक्ति द्वारा विभाजन के दीर्घकालीन प्रभाव से निर्मित मुस्लिम मानसिकता का बहुपक्षीय उद्घाटन हुआ है।''(विभाजन की हकीकत : कथा संदर्भ, पृ. 70) इस उपन्यास में नासिरा शर्मा ने एक पात्र के माध्यम से कहलवाया है कि ''यह तजुर्बा कितना तकलीफदेह होता है कि जहां आप पैदा हो, जिस जमीन को आप अपना वतन समझें, उसे बाकी लोग आपका गलत कब्जा बताएं। कदम-कदम पर यह अहसास दिलाएं कि तुम यहां के नहीं बाहर के हो।'' (नासिरा शर्मा, ज़िंदा मुहावरे, पृ. 101) प्रस्तुत पुस्तक में इस तथ्य का रेखांकन है कि विभाजन के बाद बहुत से मुसलमानों के दिमाग में यह बात पूरी तरह बैठ गई कि हिंदुस्तान उनका मुल्क नहीं है और पाकिस्तान के अलावा उनका और कोई हमदर्द हो ही नहीं सकता परंतु जब हिंदुस्तानी मुसलमान पाकिस्तान पहुंचे तो उनके प्रति दुर्व्यवहार, भ्रष्टाचार से वे भयभीत हो गए और जिस जन्नत का सपना लेकर अपनी मातृभूमि को छोड़कर वे पाकिस्तान गए थे वहां उन्हें कुछ भी हासिल नहीं हुआ। हिंदुस्तान में हिंदुस्तानी नहीं समझा गया हो और पाकिस्तानियों ने वहां स्वीकार नहीं किया गया हो तो ऐसी त्रिशंकु जीवन जीने वाले मुसलमानों की मानसिक स्थिति कितनी ऊहापोह वाली रही होगी यह सहज अंदाजा लगाया जा सकता है।

विभाजन की हकीकत : कथा संदर्भ पुस्तक का दूसरा भाग है विभाजन को आधार बनाकर लिखी गई कहानियां। जिसमें हिंदी तथा उर्दू दोनों तरह की कहानियां शामिल की गई हैं। उन्होंने कहानीकारों का उनकी कहानियों सहित परिचय देकर पाठकों के लिए यह दस्तावेज सुलभ कराया कि यदि कोई व्यक्ति मुस्लिम समाज या विभाजन पर आधारित कहानियों को पढ़ना चाहे तो यहीं से उसे जानकारी प्राप्त हो जाएगी और वह अपनी रुचि अनुसार अध्ययन कर सकता है।

कुल मिलाकर यह पुस्तक विभाजन की त्रासदी को प्रस्तुत करने की दिशा में किया गया अच्छा एवं सफल प्रयास है। मेराज अहमद द्वारा इस पुस्तक में पृ. 47 पर आधा गांव उपन्यास से दिए गए उद्धरण की ओर ध्यान दिलाना चाहूंगा कि ''बंटवारे के कारण पारिवारिक बिखराव की जिस प्रकार की पीड़ा मुसलमानों को सहनी पड़ी वैसी हिंदू और सिक्खों को नहीं झेलनी पड़ी। स्थानांतरण के समय लगभग सभी हिंदू और सिक्खों ने पाकिस्तान वाले हिस्से को सपरिवार एक साथ छोड़ दिया। वे या तो मारे गये या ठिकाने पर पहुंच गये, परंतु मुसलमानों के बहुत से परिवार ऐसे थे जिसके कुछ सदस्य पाकिस्तान चले गए कुछ हिंदुस्तान में ही रह गये।'' (आधा गांव, पृ. 302) यहां ध्यातव्य है कि मनुष्य की प्रकृति होती है हर इंसान को अपना दुख सबसे ज्यादा दिखाई देता है। दूसरे की पत्नी सुंदर दिखती है तो दूसरे का बच्चा कभी अच्छा नहीं लगता। विभाजन से आजतक हिंदू अपनी पीड़ा को बड़ा बताते और मुसलमान अपनी। जिसका कभी अंत नहीं हो सकता और ऐसा ही चलता रहा तो सांप्रदायिकता कभी भी घटेगी नहीं। दिन ब दिन बढ़ती जाएगी और जो लोग गुज़र गए वो तो अब आ नहीं सकते, ना ही वो समय वापस आ सकता है जब इस देश में हिंदू मुस्लिम एक साथ हंसी खुशी रहा करते थे। अब भी समय रहते यदि समाज मानसिकता नहीं बदली तो सांप्रदायिकता का दंश हम सभी को न जाने कब तक झेलना पड़ेगा। सत्य तो यह है विभाजन किसी एक कौम का नहीं हुआ दो देशों का सम्पूर्ण रूप से हुआ और अमन परस्ती की भावना ने हमें यह विकल्प दिया कि जो जहां रहना चाहे वह रह सकता है। कोई दो राय नहीं हो सकती कि जहां हिंदू बुरी तरह प्रभावित हुए विभाजन की त्रासदी से वहीं मुसलमान भी तबाह हो गए। दोनों की पीड़ा समान से किसी को अपने सगों के मरने के दुख ने पीड़ा पहुँचायी तो किसी को अपनों के बिछड़ने की तकलीफ तो दोनों को हुई और अभी तक इस संसार का विज्ञान, सूचना एवं प्रौद्योगिकी तकलीफ मापने का यंत्र विकसित नहीं कर पाई है। यदि कभी विकसित हो पाएगा ऐसा यंत्र तभी एक व्यक्ति मापक यंत्र की रिपोर्ट के आधार पर यह सिद्ध कर सकेगा कि उसकी पीड़ा किस-किस से अधिक है।

सहायक प्रोफेसर (हिंदी), राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय जलेसर, एटा

डॉ. मेराज अहमद, विभाजन की हकीकत : कथा संदर्भ
प्रथम संस्करण, 2015 वाङ्.मय बुक्स, अलीगढ़, मूल्य- 350

पुस्तक–समीक्षा

नये विमर्शों के बहाने सामाजिक परिवर्तन की आहट

डॉ. अब्दुल लतीफ

डॉ. इकरार अहमद द्वारा संपादित पुस्तक 'नये विमर्श और हिंदी साहित्य' तीन खंडों में विभक्त है। दलित एवं स्त्री आंदोलन के नये प्रतिमान स्थापित करती यह पुस्तक वास्तव में सामाजिक परिवर्तन की आहट की ओर इशारा कर रही है। 'दलित चेतना के स्वर', 'आधी आबादी का प्रतिरोध' और मुख्यधारा में आगमन हेतु प्रतीक्षारत शीर्षकों से विभाजित यह पुस्तक दलित, पिछड़े और स्त्री विमर्श का एक ऐसा दस्तावेज़ है जिसमें दलित, स्त्री और पिछड़ी जाति का समग्र विवेचन मिलता है। उत्तर आधुनिकता के नये विमर्श इस समय हिंदी साहित्य का केंद्र बिंदु बने हुए हैं। हिंदी के साहित्यकार एवं आलोचक या तो किसी एक विमर्श के पक्ष में है या विपक्ष में। तात्पर्य यह है कि वह इस नये दौर की सामाजिक चेतना की उपेक्षा नहीं कर सकते हैं। इन्हीं नये विमर्शों को केंद्र में रखकर इस पुस्तक की रूपरेखा निर्मित की नई है।

पुस्तक का प्रथम खंड 'दलित चेतना के स्वर' में आलोचकों ने दलित विमर्श के लगभग प्रत्येक पक्षा को स्पर्श करते हुए चिंतन एवं आंदोलन के नये मार्ग प्रस्तुत किये हैं। आज दलित एवं स्त्री विमर्श ने समाज में हलचल पैदा कर दी है। दलित साहित्य दलितों द्वारा भोगा गया साहित्य है। इसमें भोगे हुये यथार्थ के कटु अनुभवों की सशक्त अभिव्यक्ति है। मानवीय सरोकारों से ओत-प्रोत सकारात्मक सोच का दस्तावेज है-दलित साहित्य। कुव्यवस्था, कुप्रथाओं, गलत मान्यताओं के खिलाफ़ जंग का ऐलान है-दलित साहित्य। आज चुनौती है इन्हीं दुर्गुणों से निपटने की। इस पुस्तक में आलोचकों ने जिस प्रकार अपने लेखों के माध्यम से दलित और उनके जीवन से जुड़ी समस्याओं को उठाया है और उनके समाधान देने का जो प्रयास किया है, वह अत्यंत सराहनीय है।

पुस्तक के द्वितीय खंड 'आधी आबादी का प्रतिरोध' के माध्यम से नई पीढ़ी के आलोचकों ने स्त्री विमर्श और साहित्य को रेखांकित किया है। इस वैमर्शिक कृति में आलोचकों ने वैश्विक परिप्रेक्ष्य में स्त्री विमर्श की व्यापक संभावनओं को खँगाला है। निःसंदेह विमर्श की यह पुस्तक दलित एवं नारी विमर्श की पीठिका के साथ ही उसके आदि जन्मदाताओं (चाहे वे सीमोन/जॉन स्टुअर्ट मिल/एलिसश्ते जर आदि जैसी विदेशी शख्सियते हो या ताराबाई शिंदे/महादेवी जैसी स्वदेशी शख्सियतें हो) के लक्ष्यों तक जाती हुई तथ्यों के विविध अंगो पांगों का वस्तुपरक चित्रण करती है। नारी विमर्श एवं सामाजिक ज्वलंत समस्याओं से संबंधित नई पीढ़ी के आलोचकों के आलेखों का संकलन है-नये विमर्श और हिंदी साहित्य। देश की राजनीति, सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियों पर बेबाकी के साथ तल्खबयानी से भरपूर इस पुस्तक में रचनाकारों की वह तड़प एवं छटपटाहट महसूस होती है जिसमें वह मानव और मनुष्यता को बचाना चाहते हैं, जिसमें वह हर मानव विरोधी वस्तु व्यक्ति, कारकों व कारणों की भरपूर मुखालफ़त करते हुये उनसे जूझते हैं।

पुस्तक के तृतीय खंड में 'मुख्यधारा में आगमन हेतु प्रतीक्षारत' में अल्पसंख्यक समाज एवं अति पिछड़ा वर्ग जो अब तक साहित्य की धारा में अवतरित नहीं हो सका है, उसको मुख्यधारा में लाने की वकालत की है-डॉ. धर्मेंद्र प्रताप सिंह एवं माताप्रसाद जी ने। डॉ. इकरार द्वारा अपनी पुस्तक में अल्पसंख्यक एवं पिछड़े वर्ग को स्थान देने का यह सराहनीय प्रयास है। लेकिन एक कमी जो इस पुस्तक में मुझे खटकती है वह है-अल्पसंख्यक समाज की बहुत सीमित अर्थ में रखना। आज अल्पसंख्यक समाज में विशेषकर दलित मुस्लिम की सामाजिक और आर्थिक स्थिति बहुत खराब है। सच्चर कमेटी ने अपनी रिपोर्ट में कहा कि ''आज देश में मुस्लिम आबादी का बड़ा भाग हिंदू दलितों से भी दरिंद्र है।'' इसका कारण चाहे जो भी रहा हो लेकिन मेरा मानना है कि दलित नेताओं ने मुस्लिम दलितों के साथ कभी एक बनाने का प्रयास नहीं किया। नतीजा यह हुआ कि हिंदू दलित जातियों को मिलने वाली आरक्षण की सुविधा से मुस्लिम दलितों को वंचित कर दिया गया और उनके सामाजिक हालात अधिक खराब होते गये। शिक्षा, रोजगार, साहित्य और दूसरे सभी क्षेत्रों में उनका पिछड़ते जाना एकदम स्वाभाविक था। इसलिए सच्चर कमेटी के इन निष्कर्षों पर आश्चर्य नहीं होना चाहिए। साहित्य के संदर्भ में प्रतिरोध के नये क्षेत्रों पर

विमर्श करते हुये चिंतन की कुछ दिशाएँ इस ओर भी जानी चाहिए। यह साहित्य की धर्मनिरपेक्ष परंपरा की इज्ज़त का भी सवाल है।

कुल मिलाकर नये विमर्शों के परिप्रेक्ष्य में साहित्यिक स्थापनाओं को प्रस्तुत करते हुये इस पुस्तक में सामाजिक परिवर्तन की आहट सुनाई देती है। आलोचकों ने सामाजिक संरचना में बदलाव का गंभीर आकलन किया है। यह पुस्तक उन सभी छात्र/छात्राओं एवं बुद्धिजीवियों को आकर्षित करेगी जो प्रगतिशील वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखते हैं।

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग राजकीय रज़ा महाविद्यालय, रामपुर (उ.प्र.)

पुस्तक का नाम : नये विमर्श और हिंदी साहित्य, (सं.) डॉ. इकरार अहमद
प्रकाशक : वाङ्मय बुक्स, दोदपुर रोड, अलीगढ़

नई सदी का कथा समय एक कीर्तिमान है और एक मानक भी

डॉ. कमल किशोर गोयनका

'हिंदी चेतना ग्रंथमाला' के 'नई सदी का कथा समय' से गुज़रना एक सुखद अनुभव रहा। संपादकीय सरोकार, विषय वस्तु और उसकी व्यापकता इक्कीसवीं सदी की कहानियों तथा प्रवासी कहानीकारों की रचनाओं एवं अधिकतम लेखकों के सहयोग की दृष्टि से। संपादकीय ने सबसे पहले मेरा ध्यान आकर्षित किया। श्री श्याम त्रिपाठी के वैश्विक साहित्य और प्रवासी कहानी साहित्य पर विचार स्वागत-योग्य हैं। नई सदी ने जीवन और साहित्य सभी क्षेत्रों में चिंताजनक परिवर्तन किया है और भारत में हम इसका अनुभव कर रहे हैं। मनुष्यता, संवेदना, पारस्परिक मधुरता आदि संकट में हैं। साहित्य को इनसे लड़ना होगा। प्रवासी कहानीकारों ने नई वस्तु, परिवेश, जीवन-दृष्टि, भाषा आदि दी हैं और अब उनके स्वतंत्र अस्तित्त्व को कोई अस्वीकार नहीं कर सकता। डॉ. सुधा ओम ढींगरा ने भी वैश्विककरण, प्रवासी साहित्य, अंतर्जाल आदि के प्रश्न को उठाकर प्रवासी साहित्य के हक की बात भी रखी है। मैं इस संबंध में इतना ही कहूँगा कि मैं सुधा जी के विचारों से सहमत हूँ और कहना चाहता हूँ कि प्रवासी साहित्य को उसका अधिकार और स्थान मिलना शुरू हो चुका है और वह अपनी स्वतंत्र सत्ता के साथ मुख्यधारा का अंग है। हिंदी के प्रवासी लेखकों ने विगत् दो दशकों से जिस प्रकार का साहित्य दिया है, अब उस पर कोई कमज़ोर साहित्य होने का लांछन नहीं लगा सकता। 'नई सदी का कथा समय' की कल्पना और संयोजन, विषय-वस्तु का वैविध्य सभी कुछ अनोखा और अनुपम है। संपादकों ने इक्कीसवीं सदी के 12-13 वर्षों को केंद्र में रखकर कहानी, आलेख, साक्षात्कार, परिचर्चा आदि विभिन्न विधाओं के माध्यम सर्वथा नई तथा महत्त्वपूर्ण सामग्री दी है। इसमें 13 सर्वश्रेष्ठ कहानीकारों तथा 10 श्रेष्ठ कहानियों का चयन, एक गोलमेज़ परिचर्चा तो बेहद मौलिक साहित्यिक उपक्रम है। इसमें संपादकों की सूझ-बूझ तथा संयोजकों की दृष्टि और परिश्रम से महत्त्वपूर्ण सामग्री सामने आई है। अंक में मनोज रूपड़ा, मंजुलिका पाण्डेय, सुधा ओम ढींगरा तथा तेजेंद्र शर्मा की कहानियाँ हैं; जो इस अंक की शोभा हैं और एक नये संवेदनात्मक संसार से हमारा साक्षात्कार कराती हैं। पत्रिका में शास्त्रीय एवं आलोचनात्मक सामग्री की तुलना में कहानियाँ कुछ कम हैं। यह अंक इस दृष्टि से भी विशेष उल्लेखनीय है कि 50 से अधिक लेखकों के विचारों, लेखों और कहानियों को पढ़ने का सुअवसर देता है। इससे समझा जा सकता है कि संपादक पंकज सुबीर (सह-संपादक-हिंदी चेतना) ने कितना परिश्रम और कितनी निष्ठा से कार्य किया है। 'नई सदी का कथा समय' एक कीर्तिमान है और एक मानक भी। हिंदी की प्रवासी कहानी को समझने तथा उसकी आत्मा को जानने के लिए इसे देखना-पढ़ना आवश्यक है। 'नई सदी का कथा समय' ने प्रवासी साहित्य को और भी अधिक पुष्ट और समृद्ध बनाया है। उसने मुख्यधारा तक पहुँचने के लिए सेतु का निर्माण कर लिया है। मैं इस सेतु का स्वागत करता हूँ।

ए-98, अशोक विहार, फेस 2, नई दिल्ली 110052

पुस्तक : नई सदी का कथा समय (हिंदी चेतना ग्रंथमाला), संपादक : पंकज सुबीर
प्रकाशन : शिवना प्रकाशन, सीहोर, म. प्र. 466001, मूल्य-200

पुस्तक–समीक्षा

शानी के जीवन और लेखन की भीतरी तहों में दाखिल होती एक किताब

निवेदिता

हिन्दी के मुस्लिम कथाकार : शानी, ये किताब जब मेरे हाथ में आयी तो मैं सोच रही थी कि ज़िन्दगी कितनी मुख्तलिफ होती है। जब हम नहीं होते तो हमारे जीवन के टुकड़े अलग-अलग शक्लों में होती है। शानी के बारे में पढ़ना वैसा ही है जैसे दुनिया के अनुभवों से अनुगुंजित होना। इस किताब में शानी के जीवन और उनके लेखन से परिचित होने का मौका मिला। साहित्य में शानी की अलग पहचान है। वे अपने आस-पास की ज़िन्दगी को लेकर जो रचते हैं उसमें सीधी-सादी सच्चाई के अंदर एक बेचैन सच है जो उनके उपन्यास में पात्रों के माध्यम से खुलता है। उनको पढ़ते हुए एक बड़े कवि रुजेविज की बात याद आती है उन्होंने कहा था मेरी कविता खिड़की के अंदर जुड़ी हुई खिड़की खोलती है। शानी का लेखन वैसा ही है पाठक जब प्रवेश करते हैं तो गहन अंधेरा मिलता है पर जैसे-जैसे आगे बढ़ता है उसे खिड़की के अंदर एक और खिड़की नज़र आने लगती है।

इस किताब में शानी के जीवन के कई पक्ष खुलते हैं। डॉ. धनंजय वर्मा के आलेख शानी की जीवन रचना यात्रा जहां हमें शानी की ज़िन्दगी से परिचित होने का मौका देती है वही नासिरा शर्मा के लेख ये जाहिर करते हैं शानी के ज़िन्दगी के कई रंग थे। उनके अफसाने सतहों के नीचे झांकने की कोशिश करती है। आपको लगेगा कि आप रंगों की परतों में दाखिल हुए हैं।

शानी-यानी गुलशेर खां। जिनका जन्म 16 मई 1933 को हुआ। शानी खुद एक जगह लिखते हैं-जो व्यक्ति सांस्कृतिक या किसी भी प्रकार की कला संबंधी परंपरा से शून्य, बंजर-सी धरती बस्तर में जन्में, घोर असाहित्यिक घर और वातावरण में पले-बढ़े, बाहर का माहौल जिसे एक अर्से तक छू नहीं पाये एक दिन वह देखे कि साहित्य उसकी नियति बन गया है। उसी बंजर भूमि पर शानी ने जो रचा वह साहित्य की उर्वर जमीन बन गयी। शानी ने हर श्रेणी, हर वर्ग, हर भाषा के पाठकों के बीच अपनी जगह बनायी है। यह किताब शानी का आईना है। जो उनके द्वारा रचे गए सम्पूर्ण साहित्य और कलाओं को एक सूत्र में पिरोये रख कर, जीवन को ही नहीं, साहित्य व कलाओं को भी स्पंदित करता है। डॉ. वर्मा लिखते हैं- मैंने शानी को देखा-एक बेचैन और बदहवास आदमी की तरह, जो अपने वर्तमान से असंतुष्ट है, अपनी प्रतिकूल परिस्थितियों से हर पल जूझ रहा है लेकिन उसकी आंखों में साहित्य को लेकर एक सपना तैर रहा है। यह किताब शानी को जानने के लिए एक मुक्कमल किताब है। जिसमें ज़िन्दगी अलग-अलग रंगों के साथ मिलती है। उनके उपन्यास 'काला जल' समाज के अन्तर्विरोध को जिस बारीकी से उभारता है कि हम आप उसे पढ़कर खुद उस समय को परख सकते हैं। उन्हें अच्छी तरह मालूम था कि जिस समाज की तस्वीर उन्होंने काला जल में खींची है उसका अन्तर्विरोध और विडम्बनाएं क्या हैं? अगर आज की दुनिया में ऐसे लेखकों की सूची बनायी जाय जिनके लेखन में हमारी दुनिया नज़ ब बब्बर आती है, जिसके हम हिस्सेदार हैं, जो बिल्कुल हमारी लगती है तो उसमें शानी का नाम ज़रूर होगा। शानी के दोस्त उनके कातिल भी हैं दिलदार भी। शानी पर लिखते हुए नासिरा शर्मा कहती हैं-शानी को मैं सारी तल्खियों और बदकलामियों के बावजूद एक सच्चे इंसान के रूप में देखती थी। काला जल उपन्यास पढ़ते समय जितना बोर कर रहा था। पढ़ने के बाद मेरे दिल और दिमाग में अपना सफर तय करना शुरू कर दिया। जिसकी जड़े किरदार के शक्ल में मेरे अंदर कई तरह के प्रश्न उठाने लगी कि आखिर यह कौन से मुसलमान हैं जो हमसे कुछ अलग तरह से जीते हैं और सोचते हैं? अंत में वो कहतीं हैं- काश! वह कुछ दिन और जी लेते। उन्हें इतनी जल्दी नहीं जाना चाहिए था। सही समय उनकी खरी-खोटी तल्ख अभिव्यक्तियों को सुनने का यही मौका था। शानी और पाठकों में कमाल का संबंध विकसित हुआ। उस वक्त के पाठक ही नहीं आज का पाठक भी शानी से खुद को जुड़ा हुआ महसूस करता है। आज की तल्ख हक़ीकतों और त्रासदायी स्थितियों का खासकर मुस्लिम महिलाओं की स्थितियों का जो बयान शानी ने अपने उपन्यास एक लड़की की डायरी में की है वह अद्‌भूत है। डॉ. इकरार अहमद लिखते हैं-स्त्री जीवन के प्रत्येक पक्ष को अपने में

समेटे यह मार्मिक और संवेदनपूर्ण उपन्यास एक निजी डायरी को आधार बनाकर प्रस्तुत किया गया है। भले ही इसका शीर्षक 'एक लड़की की डायरी' हो पर यह प्रत्येक भारतीय गरीब मुस्लिम परिवार की लड़की की व्यथा है। डॉ. अहमद कहते हैं -यह उपन्यास स्त्री विमर्श, मुस्लिम मानस, अविवाहित जीवन की विडम्बना, बेमेल विवाह, गरीबी, अशिक्षा इत्यादि सामाजिक सरोकार का महाकाव्य है। किताब के सम्पादक डॉ. एम फ़ीरोज़ खान ने शानी के जीनव के हर एक पक्ष को समेटने की कोशिश की है। नासिरा शर्मा से लेकर मधुरेश, रोहिताशव, डॉ. शिवचन्द प्रसाद, डॉ. तारिक असलम, डॉ. नीरु, डॉ. नग़मा जावेद, मूलचंद सोनकर, खान अहमद फ़ारुख, डॉ. एम फ़ीरोज़ अहमद, सागीर अशरफ, डॉ. रमाकांत राय, डॉ. अवध बिहारी पाठक, डॉ. इकरार अहमद, रेयाना परवीन, डॉ. अरुण कुमार तिवारी समेत कई साहित्यकारों ने शानी के जीवन, उनके लेखन का साहित्यिक मूल्यांकन किया है।

शानी ने अपनी शख़्सियत की छाप हर जगह छोड़ी। वे एक ऐसे साहित्यकार थे जिनका उर्दू-हिन्दी दोनों में दखल था। उर्दू उनकी मादरी ज़ुबान थी तो हिन्दी से बेपनाह मुहब्बत। काला जल उपन्यास पढ़कर यशपाल ने उन्हें पत्र लिखा। पांच दिन पूर्व 'काला जल' पढ़ना आरंभ किया तो फिर अपना काम स्थगित करना पड़ा। लेकिन उसके लिए कोई असंतोष नहीं है। मुझे सम्पूर्ण रचना इतनी सुगठित सार्थक-सप्रयोजन और सफल लगी कि आपको बधाई दिए बिना नहीं रह सकता। यह किताब शानी के संपूर्ण जीवनानुभव और समग्र कला अनुभव के रूप में आकार लेती है। जीवन और लेखन की भीतरी तहों में दाखिल होती हैं। पढ़ते हुए आप वैसी ही हरारत महसूस करेंगे जैसे लिखते वक्त लेखक ने महसूस की होगी। जिसमें कई रंग झिलमिलाते हैं, शक्लें बनती हैं और टूटती जाती हैं। रंग रेखाओं के आर-पार शानी के सारे पात्र आपसे इस तरह मिलते हैं जैसे वे आपके हमसाया हों।

सम्पादकः डॉ. एम. फ़ीरोज़ खान, हिन्दी के मुस्लिम कथाकार : शानी
वाङ्मय प्रकाशन, 205 ओहद रेजीडेंसी, दोदपुर रोड, अलीगढ़-202002, मूल्यः 500/

पृ. 40 का शेष भाग....

इस कहानी में विमला जिस जीवन को अपनाती है वह उसकी विवशता है। उसका ध्येय तो उसका गृहस्थ जीवन उसका आन्तरिक क्षेत्र है वही उसके जीवन को सरस बनाता है उसी में उसका नारी-मन असीम संतोष पाता है। अपने परिवार में जाने का अवसर मिलने पर वह असीम सुख की अनुभूति करती है- आज ईश्वर ने मेरी मुराद पूरी कर दी। आज जो सुख मिला है, अतीत के दुखों को जीतने के लिए काफी है।''[12]

इसी तरह अन्य कई कहानियों में श्रीमती शर्मा ने नारी-जीवन में नये जीवन की तलाश को रचनातंत्र का आधार बनाया है। इन कहानियों से व्यंजना यही होती है कि नारी द्वारा नये जीवन की तलाश, नई राहें, नया कर्म क्षेत्र कहीं न कहीं उसे निराशा और कुंठा ही देता है। वह स्वयं इनके जाल में फँसकर असन्तोष और टूटन के भँवर जाल में फँसती चली जाती है वह नारी जीवन की मंज़िल नहीं बन पाती।

संदर्भ-

1. मंगलीः पतिलो कमाविश शं नो भव द्विपढ़े। ऋक् संहिता-10/85/47
2. मा भ्राता भ्रातंर द्विक्षन्मा स्वसारयुत स्वसां। अथर्ववेद-3/30/3
3. डॉ. अपर्णा शर्मा, खो गया गाँव, (कहानी-संग्रह)
4. कल्याण, नारी अंक, पृ. 93
5. वही, पृ. 93
6. अपर्णा शर्मा, खो गया गाँव, कहानी-संग्रह की कहानी दीदी की शादी, पृ. 22
7. वही, पृ. 23
8. वही, पृ. 25
9. वही, पृ. 26
10. वही, पृ. 26
11. खो गया गाँव, कहानी-संग्रह की कहानी पगली की वापसी, पृ. 34
12. वही, पृ. 34

पुस्तक–समीक्षा

विराट रचनाशीलता पर संक्षिप्त विश्लेषण

योगित यादव

सुदूर दक्षिण में केरल तट की रहने वाली आतिरा वी की कलम से निकला यह शोध प्रबंध ही मेरा उनसे परिचय है। वाङ्.मय बुक्स की ओर से प्राप्त पुस्तक 'मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में स्त्री विमर्श' निश्चित ही मेरे लिए आकर्षण का विषय थी। मैत्रेयी पुष्पा हिंदी साहित्य की महत्त्वपूर्ण उपस्थिति हैं। हिंदी साहित्य में उन्होंने जिस बेबाकी से कलम चलाई है, वह हर दौर में ध्यान आकर्षित करेगी। चाहे-अनचाहे उनका व्यक्तित्व भी विवादों में रहा है। ऐसे में उन पर कुछ भी, कहीं भी लिखा जाना ध्यान आकर्षित करता है। इसी आकर्षण में बंधकर मैंने इस पुस्तक को पढ़ना शुरू किया। जब मैंने जाना कि यह शोध पुस्तक केरल की किसी लेखिका ने लिखी है तो निश्चित है वह आकर्षण का एक और बिंदु था। आदरणीय कवयित्री रति सक्सैना जी के साहित्य जगत में बहुत सक्रिय होने के बाद भी इस धारणा ने हमारे मन में गहरे से पैठ बनाई है कि भारत का यह छोर हिंदी से दूर ही है। उस पर भी केरल जैसे क्षेत्र में जहां मलयालम साहित्य ने कई कीर्तिमान स्थापित किए हैं, वहां से हिंदी में इतना सुंदर काम पढ़ने को मिलना मन को सुकून देता है। केरल की युवा लेखिका आतिरा नायर का इतनी कम उम्र में इस बड़ी रचनाकार पर किया गया शोध साहित्य में युवाओं की रचनाधर्मिता और आलोचना के क्षेत्र में उनके सशक्त आगमन के प्रति भी आश्वस्त करता है। कुछ और बिंदुओं पर यदि और गहनता से काम किया जाता, तो निश्चित रूप से यह शोध पुस्तक मील का पत्थर साबित होती। फिर भी केरल से आने वाली युवा हिंदी लेखिका के रूप में आतिरा का स्वागत किया जाना चाहिए।

आतिरा एक संभावनाशील युवा लेखिका हैं। इस शोध पुस्तक में जिस मनोयोग से उन्होंने मैत्रेयी पुष्पा के दो उपन्यासों में मौजूद स्त्री विमर्श का अध्ययन किया है, वह काबिले तारीफ है। इसे एक विशाल व्यक्तित्व के विशाल रचना संसार से संक्षिप्त विश्लेषण के तौर पर लिया जा सकता है।

अपनी रचनाशीलता, सक्रियता, विमर्श के कारण चर्चा में रही मैत्रेयी पुष्पा मौजूदा साहित्य में विशेष उपस्थिति रखती हैं, निश्चित ही किसी भी उम्र, अंचल या वर्ग के पाठक के लिए यह नई सूचना नहीं है। उनके आगमन को ग्रामीण अंचल का फिर से साहित्य में लौट आने के रूप में भी देखा गया। स्वयं राजेंद्र यादव ने उनके उपन्यासों और कहानियों पर बात करते हुए कहा है कि मैत्रेयी उस ग्रामीण अंचल को फिर से साहित्य में ले आईं हैं, जो रेणु के चले जाने के कारण हिंदी साहित्य से छूट गया था। यह प्रशंसा उनके लिए बंधन न बने शायद इसी अवधारणा को तोड़ते हुए मैत्रेयी पुष्पा ने 'विजन' नामक उपन्यास लिखा। महानगरों के उच्च शिक्षित वर्ग में होने वाले स्त्री शोषण पर आधारित इस उपन्यास ने यह साबित कर दिया कि मैत्रेयी की सीमा वह नहीं हैं, जिसे मौजूदा हिंदी जगत नापने की कोशिश कर रहा है। बल्कि वे अपने व्यक्तित्व और कृतित्व में भी एक विराट संसार खोलने का माद्दा रखती हैं। इस विराट संसार का आकलन करने के लिए आतिरा ने अपनी सीमा निर्धारित करते हुए इसे 'चाक' तथा 'विजन' उपन्यास तक ही सीमित रखा है। इनमें मौजूद स्त्री विमर्श को उन्होंने स्त्री शोषण, स्त्री के संघर्ष और परंपरागत नारी संहिता को चुनौती सरीखे उपवर्गों में विभाजित किया है।

प्रस्तुत पुस्तक को सात अध्यायों में विभक्त किया गया है, जिनमें पहला अध्याय स्त्री विमर्श की एक विषय के रूप में पड़ताल करता है। पुरातन, प्राचीन और ऐतिहासिक संदर्भों का इस्तेमाल करते हुए लेखिका भारतीय पक्ष में मौजूद स्त्री विमर्श का ब्यौरा पेश करती हैं। पारंपरिक जीवन और समाज से होते हुए वे स्त्रियों और उनके विमर्श को हिंदी साहित्य में तलाशती हैं। साथ ही यह प्रश्न भी उठाती हैं कि ''हिंदी साहित्य में जिस तरह मध्यकाल में मीराबाई जैसी भक्त कवयित्रियों की कविता में प्राप्त स्त्रीवादी दृष्टि की पहचान नहीं हुई है, उसी तरह आधुनिक काल में महादेवी वर्मा, सुभद्राकुमारी चौहान आदि की रचनाओं में व्यक्त स्त्री दृष्टि की भी खोज नहीं हुई है। भारतीय साहित्य में स्त्रियों की रचनाशीलता का मूल्यांकन अंग्रेज़ी तथा हिंदी के अलावा अन्य भाषाओं में भी हो रहे हैं, लेकिन हिंदी में ऐसी कोशिशें बहुत ही कम

दिखाई देती हैं। अपने कथन को पुष्ट करने के लिए वे पाश्चात्य स्त्री विमर्श की ओर जाती हैं और वहां से कुछ उदाहरण पाठक के समक्ष प्रस्तुत करती हैं। लेकिन इसके साथ ही उन्हें यह विश्वास भी है कि स्त्रियों पर जितना पुरुषों ने लिखा है वह कहीं भी उस रचनाशीलता का मुकाबला नहीं कर सकता जो स्त्रियों ने स्त्रियों पर लिखा है। वे कहती हैं, पुरुष रचनाकारों द्वारा भी स्त्री की मानसिकता को चित्रित करने का प्रयास हुआ तो है, फिर भी उनकी दृष्टि अधूरी है। जिस प्रकार जमीन पर पांव रखे बिना जमीन को छूने का अनुभव नहीं होता उसी प्रकार महज अंदाज से स्त्री की मानसिकता को व्यक्त करना नामुमकिन है। लेखिकाओं ने नारी जीवन पर ही नहीं, उनकी तमाम संवेदनाओं को व्यक्त करने में भी पुरुषों से ज्यादा कामयाबी हासिल की है। यहां वे कृष्णा सोबती, मृदुला गर्ग, प्रभा खेतान, मैत्रेयी पुष्पा आदि का नाम उल्लेख करना नहीं भूलती।

पुस्तक के दूसरे अध्याय में आतिरा ने मैत्रेयी के व्यक्तित्व में झांकने का प्रयास किया है। जिसके लिए उन्होंने उनकी जीवनी, जीवन के विभिन्न आयाम, समीक्षकों की दृष्टि और उनकी कृतियों को झरोखे के रूप में इस्तेमाल किया है। विशेष तौर से 'चाक' से गांव में संघर्ष करने वाली मैत्रेयी निकालती हैं तो 'विजन' में उन्हें महानगर के प्रपंचों को समझते हुए भी छली जा रही मैत्रेयी नज़र आती है।

आगे के विभिन्न अध्यायों में लेखिका ने विवेच्य दोनों उपन्यासों की संक्षिप्त कथा कहने के साथ ही उसमें मौजूद स्त्री संघर्ष, संवेदना, चुनौतियों और संकटों को पाठक के समक्ष प्रस्तुत किया है। उपन्यासों में मौजूद कुछ विशेष प्रसंगों को उठाते हुए वे उन आयामों को महसूस करती हैं, जहां उपन्यासकार ने स्त्री अधिकार की परिधि का विस्तार किया है। उदाहरण के लिए चाक में चंदन की शिक्षा का प्रसंग उठाते हुए वे साबित करती हैं कि बच्चे की शिक्षा के निर्णय में सिर्फ पुरुष का ही नही स्त्री का भी अधिकार है। वहीं विजन में पढ़ी-लिखी महानगरीय संस्कृति में प्रपंचों के उदाहरण प्रस्तुत करते हुए वे डॉ. नेहा और उसकी सास के बीच हुए वार्तालाप का प्रसंग उठाती हैं। डॉ. नेहा की सास कहती है, ''बांझ औरत से तो कानून भी तलाक का अधिकार देता है।'' निश्चित ही यह प्रसंग बताता है कि स्त्री के संपूर्ण अधिकार की मांग करने वालों को मौजूदा कानून पर भी पुनर्विचार करना होगा। सबसे अंत के अध्याय मूल्यांकन में आतिरा ने अपना मत व्यक्त किया है। जिसमें वे स्त्री विमर्श पर अपने विचार प्रस्तुत करती हैं। वे कहती हैं, ''जब से स्त्री सशक्तिकरण वर्ष मनाया गया तब से 'नारी', 'स्त्री' या 'महिला' शब्द समस्त जगत में उथल-पुथल मचा देने वाले आकर्षक शब्द सिद्ध होकर आए हैं। हर कोई अपने ढंग से स्त्री के लिए सोच रहा है। साहित्य का ज्वलंत मुद्दा स्त्री विमर्श है। साहित्यकार व बुद्धिजीवी गण सदियों से शोषित, दलित, पीछे धकेली गई स्त्री को केंद्र में लाने के लिए संघर्षरत हैं। स्त्री की प्रत्येक समस्या पर विचार विश्लेषण करना ही स्त्री विमर्श है।

निश्चित ही लेखिका का सबसे अंत में अपना विचार दिया जाना अखरता है। हो सकता है कि यह आलोचना का परंपरागत ढांचा हो, लेकिन पाठकीय जिज्ञासा और भी बहुत कुछ चाहती है। यह शोध पुस्तक है जिसमें लेखिका कथा के बीच में मौजूद टिप्पणियों के सहारे अपनी बात कह सकती थीं, बल्कि कहनी ही चाहिए थी। अन्यथा वृत्तांत के मौखिक भी सुना जा सकता है। यथा उपन्यासों के नामकरण की भी समालोचीय दृष्टि से पड़ताल की जा सकती थी। क्योंकि आतिरा अध्यापन से जुड़ी हैं तो उन्हें आलोचनात्मक दृष्टि को और प्रखर करना होगा। फिर भी सुदूर केरल तट से हिंदी में कलम उठाने के लिए आतिरा नायर को साधुवाद।

911, सुभाष नगर, जम्मू

लेखिका-आतिरा वी, पुस्तक-मैत्रेयी पुष्पा के उपन्यासों में स्त्री विमर्श
वाङ्मय बुक्स, 205 ओहद रेजीडेंसी, दोदपुर रोड, अलीगढ़-202002, मूल्य : 300/

पुस्तक–समीक्षा

तीन गोलियाँ तीन बंदर

डॉ. मो. अरशद

डॉ. खान हफीज़ का 'तीन गोलियाँ तीन बंदर' लघु कथा-संग्रह है जिसमें खान हफीज़ ने स्वदेश प्रेम, दो बकरे, ममता, झण्डा, मदारी, तीन गोलियाँ, सम्मान, इंतज़ार, शादी, एक टुकड़ा, दीवाली, संतान का दुख, स्त्रीधन, ईद का दिन, संभोग, प्रतीक्षा, समलैंगिक, निर्णय, लेखक, खरगोश, समझदारी, वारिस, भविष्यफल, नारी, गंदगी, हवालात, विस्फोट, संग्राम, धंधा, बाबा, शैतान, दादा, तीन बंदर और औलाद जैसे शीर्षकों के माध्यम से 120 लघु कथाऐं प्रस्तुत करते हुऐ समाज की कुरीतियों पर कटाक्ष किया है और साथ ही हिंदुस्तानी सभ्यता व संस्कृति को भी उजागर करने का सफल प्रयास किया है। आपकी लघुकथा के संदर्भ में राष्ट्रीय सहारा कानपुर के संपादक श्री नवोदित लिखते है-''खान हफीज़ साहब जैसे चलते-चलते विषय उठा लेते हैं। हम और आप जिन विषयों पर ध्यान भी नहीं देते, खान हफीज़ साहब उनपर कहानी लिख डालते है, कमाल की नज़र है उनकी, वह मानवीय, रिश्ते हों, पारिवारिक स्थितियाँ हो, राजनीति हो या सरकारी विभाग, खान साहब को हर जगह कहानी मिल जाती है। उस कहानी को दिलचस्प बनाना उनकी खूबी है।''(तीन गोलियाँ तीन बंदर, पृ. 5)

उपरोक्त कथन से डॉ. खान हफीज़ के फन पर काफी हद तक प्रकाश पड़ जाता है। उनकी लघुकथा 'समलैंगिक' को इस संग्रह की श्रेष्ठ लघुकथा में रखा जा सकता है जोकि लघुकथा कला की कसौटी पर हर प्रकार से खरी उतरती नज़र आती है, लेखक ने उस विषय को चंद पक्तियों में व्यक्त कर दिया है। कहानी का आरंभ कहानीकार इस प्रकार करता है ....दो औरतों ने आपस में विवाह करने का निर्णय लिया... ...एक दिन खबर उड़ी कि वह दोनों औरतें गर्भवती है।''

यह लघुकथा बेहतरीन फनकारी की उमदा मिसाल कही जा सकती है। यही फनकारी है कि लेखक अपनी बात कहे, व्याख्या न करे, न फैसले सुनाए और न ही प्रवचन या आदेश दे क्योंकि व्याख्या करना या मतलब समझना पाठक का काम होता है लेखक का नहीं। अतः कहा जा सकता है कि डॉ. खान हफीज़ की अधिकतर लघु कथा फन और ख्याल दोनों एतबार से बेहतरीन लघु कथा में शुमार की जा सकती है। आशा है कि कथा साहित्य प्रेमी पाठको में लघुकथा-संग्रह का स्वागत किया जायेगा जिसके लिये लेखक बधाई का पात्र है।

पुस्तक- तीन गोलियाँ तीन बंदर, लेखक-डॉ. खान हफीज़
प्रकाशक-विकास प्रकाशन, 311 सी विश्व बैंक बर्रा कानपुर-208027, संस्करण-प्रथम 2013, मूल्य-200/-

असि. प्रोफेसर, हलीम मुस्लिम पी. जी. कॉलेज, कानपुर